शीराज़ा

हिन्दी

ललित कला, संस्कृति व साहित्य अकादमी जम्मू-कश्मीर जम्मू

शीराज़ा हिन्दी

सम्पादक

नरेन्द्र खजूरिया

ललितकला, संस्कृति व साहित्य अकादमी, जम्मू-कश्मीर, जम्मू ।

वार्षिक : चार रुपये प्रति अंक : दो रुपये

सम्पादकीय पत्र-व्यवहार का पता :

नरेन्द्र खजूरिया

सम्पादक शीराज़ा [हिन्दी]

ललितकला, संस्कृति व साहित्य अकादमी, जम्मू व कश्मीर,

एक्सचेंज रोड, जम्मू

फोन : ५०४०

सैक्रेटरी, द्वारा, ललितकला, संस्कृति व साहित्य अकादमी, जम्मू व कश्मीर के लिए प्रकाशित तथा योगेश प्रेस, जालन्धर में मुद्रित ।

अक्तूबर, १९६६

पत्र-मंच

●

स्व० डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल

'शीराज़ा' के दो अंक मुझे मिले।...प्रसन्नता हुई, विशेषत: इस बात से कि उनमें पर्याप्त सामग्री स्थानीय लोक-साहित्य की है, और कुछ जम्मू-कश्मीर से वाहर हिन्दी क्षेत्र की है।

आचार्य किशोरीदास वाजपेयी, कनखल

'शीराज़ा' के दो अंकों की दो प्रतियां मिलीं, धन्यवाद। बहुत अच्छी चीज़ है; पर 'शीराज़ा' का मतलब नहीं समझ सका। कोई बात नहीं।'मम्मट'...आदि नाम का अर्थ भी हम नहीं जानते, पर उनके काम हमारे लिए अपूर्व निधि हैं। नाम नाम ही है।

डॉ० हरिवंश राय बच्चन, नई दिल्ली

'शीराज़ा' के अक्तूबर, १९६५ और अप्रैल, १९६६ के अंक प्राप्त हुए। 'शीराज़ा' की सामग्री मुझे बहुत पसन्द आई।
इसे अधिकाधिक स्थानीय रंग देना चाहिए। आशा है सभी विधाओं में स्थानीय प्रतिभाओं को आप आगे लाएंगे।
सुरुचिपूर्ण संपादन के लिए मेरी बधाई। इसका प्रकाशन-क्रम क्या है। मैं इसका हर अंक देखना चाहूंगा......

श्री विष्णु प्रभाकर, दिल्ली

आपका प्रयत्न सचमुच सराहनीय है। दोनों अंक अच्छे लगे।

'नव भारत टाइम्स', नई दिल्ली

'शीराज़ा' जम्मू-कश्मीर राज्य की पत्रिका है। निश्चय ही इस राज्य में हिन्दी के प्रचार एवं प्रसार में इससे बहुत बड़ा सहयोग मिलेगा। क्षेत्रीय लेखकों की रचनाएं अपना विशिष्ट स्थान रखती हैं। इससे जहां कश्मीर के इतिहास, संस्कृति और कला का परिचय होता है वहां कश्मीर के लोक जीवन और लोकगीतों का ज्ञानार्जन भी होता है। इस प्रकार की उच्चस्तरीय पत्रिका का प्रकाशन न केवल इस प्रदेश के एक भारी अभाव की पूर्ति है, अपितु स्वस्थ साहित्य की अभिवृद्धि और स्थानीय लेखकों को प्रोत्साहित करने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है।

श्रीमती तारा तिक्कू, सम्पादिका, 'भाषा', केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, दिल्ली

'शीराज़ा' जम्मू और कश्मीर के सुरम्य अंचल की सर्वोत्तम प्रतिनिधि पत्रिका है। इसकी आंचलिकता में गरिमा का भाव है। हिन्दी के उन्नयन में 'शीराज़ा' सफल सिद्ध होगा।

'नीहारिका', आगरा

जम्मू व कश्मीर से एक उच्चस्तरीय हिन्दी पत्रिका का प्रकाशन न केवल इस प्रदेश के एक भारी अभाव की पूर्ति करता है, वरन् स्वस्थ साहित्य की अभिवृद्धि की दिशा में भी आशा बंधती है। एक प्रमुख बात यह भी है कि पत्रिका के माध्यम से कुछ उदीयमान स्थानीय स्वरों को प्रोत्साहन मिलेगा।

'शीराज़ा' की साज-सज्जा और सम्पादन में आकर्षण है।... अपेक्षा है कि यह पत्रिका साहित्यिक विकास की दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य करेगी। यह लक्षण शुभ है कि शीराज़ा में स्थानीय स्वरों के अतिरिक्त देश की व्यापक हिन्दी साधना भी स्थान पा सकी है।

श्री प्रेमनाथ दर, नई दिल्ली

'शीराज़ा' मिला।...अब कौन कहेगा कि जम्मू-कश्मीर का साहित्य-संगीत राष्ट्र-भाषा में कम निखरता है।

श्री हरिकृष्ण कौल, श्रीनगर

'शीराज़ा' के दो अंक मिले, धन्यवाद। सच मानिए, मुझे आशा नहीं थी कि इसका सम्पादन तथा गेट अॅप इतना सुन्दर होगा।

श्री रामकुमार भ्रमर, नई दिल्ली

...'शीराज़ा' खूब अच्छी पत्रिका है। मेरी बधाइयां स्वीकारें—सुयोग्य संपादन और सुन्दर प्रकाशन के लिए।

श्री मधुर शास्त्री, नई दिल्ली

एक अहिन्दी भाषी क्षेत्र से इतनी सूझ-बूझ और सुसंस्कृत साहित्यिक पत्रिका के प्रकाशन के लिए आपको बधाई देता हूं।

श्री आनन्द कुमार आशु, सम्पादक, 'मूल्यांकन', मुंगेर, बिहार

छपाई, सफ़ाई, सामग्री चयन एवं सम्पादन की दृष्टि से 'शीराज़ा' का हर अंक स्थायी महत्त्व का है। 'शीराज़ा' हिन्दी की उच्च-स्तरीय पत्रिकाओं के बीच निःसंकोच प्रतिष्ठित होगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

श्री जवाहरलाल हण्डू, कुरुक्षेत्र

...यकीन ही नहीं आया कि यह पत्रिका जम्मू-कश्मीर राज्य से निकलती है। राज्य में हिन्दी के विकास, प्रचार और प्रगति के पथ पर यह पहला मील पत्थर है। शुभ कामनाएं और बधाई।

श्री भूपेन्द्र कुमार स्नेही, दिल्ली

...आपके सुयोग्य सम्पादन में 'शीराज़ा' साहित्यिक पत्रिकाओं में अपना विशिष्ट स्थान बना लेगा, ऐसा मुझे विश्वास है।

शीराज़ा हिन्दी

लेख

काव्य धारा

कथा साहित्य

स्थायी स्तम्भ

शीराज़ा (हिन्दी)

हिन्दी साहित्य के भीष्म पितामह—डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल के निधन से न केवल हिन्दी-जगत, वरन् समस्त भारतीय भाषाओं की अपूरणीय क्षति हुई है।

साहित्यिक ऋषि डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल वेदों तथा पुराणों के महान पण्डित, सच्चे-निर्देशक तथा ज्ञान के विश्वकोष थे।

'शीराज़ा' (हिन्दी) को सदा ही डॉ० महोदय का आशीर्वाद मिलता रहा। हमारे अनुरोध पर उन्होंने 'शीराज़ा' में प्रकाशनार्थ अपना एक लेख, 'राष्ट्र का स्वरूप' भेजा, जिसे हम उनकी पुण्य-स्मृति में श्रद्धापूर्वक प्रकाशित कर रहे हैं।

●

अन्तर प्रादेशिक सांस्कृतिक प्रदर्शन योजना के अन्तर्गत आसाम सांस्कृतिक दल ने अक्तूबर, १९६६ में श्रीनगर प्रांत में सफल प्रदर्शन किए। इसी योजना के अन्तर्गत जम्मू-कश्मीर राज्य से भी कलाकारों का एक दल, जिसमें लद्दाख, कश्मीर तथा जम्मू के प्रतिनिधि कलाकार सम्मिलित होंगे, दिसम्बर, १९६६ में आसाम-मणिपुर में कला-प्रदर्शन के लिए जायेगा।

●

अक्तूबर, १९६५ तथा अप्रैल, १९६६ का 'शीराज़ा' (हिन्दी) आपने पसन्द किया है। सम्मतियां आ रही हैं। उनमें से कुछेक प्रस्तुत अंक में छापी जा रही हैं। सम्मति भेजने वाले पाठकों और स्नेहियों के हम कृतज्ञ हैं। हमारा सदा यही प्रत्यन रहेगा कि 'शीराज़ा' को और भी उत्कृष्ट बनायें।

नरेन्द्र खजूरिया

राष्ट्र का स्वरूप

डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल

भूमि, भूमि पर बसने वाला जन और जन की संस्कृति, इन तीनों के सम्मिलन से राष्ट्र का स्वरूप बनता है।

भूमि का निर्माण देवों ने किया है, वह अनन्त काल से है। उसके भौतिक रूप, सौन्दर्य और समृद्धि के प्रति सचेत होना हमारा आवश्यक कर्त्तव्य है। भूमि के पार्थिव स्वरूप के प्रति हम जितने अधिक जाग्रत होंगे उतनी ही हमारी राष्ट्रियता बलवती हो सकेगी। यह पृथ्वी सच्चे अर्थों में समस्त राष्ट्रीय विचार-धाराओं की जननी है। जो राष्ट्रीयता पृथ्वी के साथ नहीं जुड़ी वह निर्मूल होती है। राष्ट्रीयता की जड़ें पृथ्वी में जितनी गहरी होंगी उतना ही राष्ट्रीय भावों का अंकुर पल्लवित होगा। इसलिए पृथ्वी के भौतिक स्वरूप की आद्योपान्त जानकारी प्राप्त करना, उसकी सुन्दरता, उपयोगिता और महिमा को पहचानना आवश्यक धर्म है।

इस कर्त्तव्य की पूर्ति सैंकड़ों-हजारों प्रकार से होनी चाहिए। पृथ्वी से जिस वस्तु का संबंध है, चाहे वह छोटी हो या बड़ी, उसका कुशल-प्रश्न पूछने के लिए हमें कमर कसनी चाहिए। पृथ्वी का सांगोपांग अध्ययन जागरणशील राष्ट्र के लिए बहुत ही आनन्दप्रद कर्त्तव्य माना जाता है। गांवों और नगरों में सैंकड़ों केन्द्रों से इस प्रकार के अध्ययन का सूत्रपात होना आवश्यक है।

उदाहरण के लिए पृथ्वी की उपजाऊ शक्ति को बढ़ाने वाले मेघ जो प्रति वर्ष

समय पर आकर अपने अमृत जल से इसे सींचते हैं, हमारे अध्ययन की परिधि के अन्तर्गत आने चाहिए। उन मेघजलों से परिवर्द्धित प्रत्येक तृण-लता और वनस्पति का सूक्ष्म परिचय प्राप्त करना भी हमारा कर्त्तव्य है।

इस प्रकार जब चारों ओर से हमारे ज्ञान के कपाट खुलेंगे, तब सैकड़ों वर्षों से शून्य और अन्धकार से भरे हुए जीवन के क्षेत्रों में नया उजाला दिखाई देगा।

धरती माता की कोख में जो अमूल्य निधियाँ भरी हैं, जिनके कारण वह वसुन्धरा कहलाती है उससे कौन परिचित न होना चाहेगा ? लाखों करोड़ों वर्षों से अनेक प्रकार की धातुओं को पृथ्वी के गर्भ में पोषण मिला है। दिन-रात बहने वाली नदीयों ने पहाड़ों को पीस-पीस कर अगणित प्रकार की मिट्टियों से पृथ्वी की देह को सजाया है। हमारे भावी आर्थिक अभ्युदय के लिए इन सब की जांच-पड़ताल अत्यन्त आवश्यक है। पृथ्वी की गोद में जन्म लेने वाले जड़-पत्थर कुशल शिल्पियों से सँवारे जाने पर अत्यन्त सौन्दर्य का प्रतीक बन जाते हैं। नाना भांति के अनगढ़ नग विंध्य की नदियों के प्रवाह में सूर्य की धूप से चिलकते रहते हैं, उन चीलवटों को जब चतुर कारीगर पहलदार कटाव पर लाते हैं तब उनके प्रत्येक घाट से नयी शोभा और सुन्दरता फूट पड़ती है, वे अनमोल हो जाते हैं। देश के नर-नारियों के रूप-मण्ड़न और सौन्दर्य-प्रसाधन में इन छोटे पत्थरों का भी सदा से कितना भाग रहा है; अतएव हमें उनका ज्ञान होना भी आवश्यक है।

पृथ्वी और आकाश के अन्तराल में जो कुछ सामग्री भरी है, पृथ्वी के चारों ओर फैले हुए गम्भीर सागर में जो जलचर एवं रत्नों की राशियाँ हैं, उन सब के प्रति चेतना और स्वागत के नये भाव राष्ट्र में फैलने चाहिए। राष्ट्र के नवयुवकों के हृदय में उन सब के प्रति जिज्ञासा की नई किरणें जब तक नहीं फूटतीं तब तक हम सोये हुए के समान हैं।

विज्ञान और उद्यम दोनों को मिलाकर राष्ट्र के भौतिक स्वरूप का एक नया ठाट खड़ा करना है। यह कार्य प्रसन्नता, उत्साह और अथक परिश्रम के द्वारा नित्य आगे बढ़ाना चाहिए। हमारा यह ध्येय हो कि राष्ट्र में जितने हाथ हैं उन में से कोई भी इस कार्य में भाग लिए बिना रीता न रहे। तभी मातृभूमि की पुष्कल समृद्धि और समग्र रूप-मण्डन प्राप्त किया जा सकता है।

मातृभूमि पर निवास करने वाले मनुष्य राष्ट्र का दूसरा अंग हैं। पृथ्वी हो और मनुष्य न हों, तो राष्ट्र की कल्पना असम्भव है। पृथ्वी और जन दोनों के सम्मिलन से ही राष्ट्र का स्वरूप सम्पादित होता है। जन के कारण ही पृथ्वी मातृभूमि की संज्ञा

प्राप्त करती है। पृथ्वी माता है और जन सच्चे अर्थों में पृथ्वी का पुत्र है—

माता भूमि पुत्रोअहं पृथिव्या।

'भूमि माता है, मैं उसका पुत्र हूं।'

जन के हृदय में इस सूत्र का अनुभव ही राष्ट्रियता की कुञ्जी है। इसी भावना से राष्ट्र निर्माण के अंकुर उत्पन्न होते हैं।

यह भाव जब सशक्त रूप में जागता है तब राष्ट्र-निर्माण के स्वर वायुमण्डल में भरने लगते हैं। इस भाव के द्वारा ही मनुष्य पृथ्वी के साथ अपने सच्चे सम्बन्ध को प्राप्त करते हैं। जहां यह भाव नहीं है वहां जन और भूमि का सम्बन्ध अचेतन और जड़ बना रहता है। जिस समय भी जन का हृदय भूमि के साथ माता और पुत्र के सम्बन्ध को पहचानता हैं उसी क्षण आनन्द और श्रद्धा से भरा हुआ उसका प्रणाम-भाव मातृभूमि के लिए इस प्रकार प्रकट होता है—

नमो मात्रे पृथिव्यै। नमो मात्रे पृथिव्यै।

माता पृथ्वी को प्रणाम है। माता पृथ्वी को प्रणाम है।

यह प्रणाम भाव ही भूमि और जन का दृढ़ बन्धन है। इसी दृढ़ भित्ती पर राष्ट्र का भवन तैयार किया जाता है। इसी दृढ़ चट्टान पर राष्ट्र का चिर जीवन आश्रित रहता है। इसी मर्यादा को मानकर राष्ट्र के प्रति मनुष्यों के कर्त्तव्य और अधिकारों का उदय होता है। जो जन पृथ्वी के साथ माता और पुत्र के सम्बन्ध को स्वीकार करता है, उसे ही पृथ्वी के वरदानों में भाग पाने का अधिकार है। माता के प्रति अनुराग और सेवाभाव पुत्र का स्वाभाविक कर्त्तव्य है। वह एक निष्कारण धर्म है। स्वार्थ के लिए पुत्र का माता के प्रति प्रेम, पुत्र के अध:पतन को सूचित करता है। जो जन मातृ-भूमि के साथ अपना सम्बन्ध जोड़ना चाहता है उसे अपने कर्त्तव्यों के प्रति पहले ध्यान देना चाहिए।

माता अपने सब पुत्रों को समान भाव से चाहती है। इसी प्रकार पृथ्वी पर बसने वाले जन बराबर हैं। उनमें ऊँच और नीच का भाव नहीं है। जो मातृ भूमि के हृदय के साथ जुड़ा हुआ है वह समान अधिकार का भागी है। पृथ्वी पर निवास करने वाले जनों का विस्तार अनन्त है—नगर और जनपद, पुर और गांव, जंगल और पर्वत जो नाना प्रकार के जनों से भरे हुए हैं। ये जन अनेक प्रकार की भाषाएं बोलने वाले और अनेक धर्मों के मानने वाले हैं, फिर भी वे मातृभूमि के पुत्र हैं और इस कारण उनका सौहार्द भाव अखण्ड है। सभ्यता और रहन-सहन की दृष्टि से जन एक-दूसरे से आगे-पीछे हो सकते हैं, किन्तु इस कारण से मातृभूमि के साथ उनका जो सम्बन्ध है उसमें कोई भेद-भाव उत्पन्न नहीं हो सकता। पृथ्वी के विशाल प्रांगण में सब जातियों के लिए समान क्षेत्र हैं। समन्वय के मार्ग से भरपूर प्रगति और उन्नति करने का सब को एक जैसा अधिकार है। किसी जन को पीछे छोड़ कर राष्ट्र आगे नहीं

बढ़ सकता। अतएव राष्ट्र के प्रत्येक अंग की सुध हमें लेनी होगी। राष्ट्र के शरीर के एक भाग में यदि अन्धकार और निर्बलता का निवास है तो समग्र राष्ट्र का स्वास्थ्य उतने अंश में असमर्थ रहेगा। इस प्रकार समग्र राष्ट्र जागरण और प्रगति की एक जैसी उदार भावना से सचालित होना चाहिए।

जन का प्रवाह अनन्त होता है। सहस्त्रों वर्षों से भूमि के साथ राष्ट्रीय जन ने तादात्म्य प्राप्त किया है। जब तक सूर्य की रश्मियां नित्य प्रातःकाल भुवन को अमृत से भर देती हैं तब तक राष्ट्रीय जन का जीवन भी अमर है। इतिहास के अनेक उतार-चढ़ाव पार करने के बाद भी राष्ट्र-निवासी जन नयी उठती लहरों से आगे बढ़ने के लिए आज भी अजर-अमर हैं। जन का सततवाही जीवन नदी के प्रवाह की तरह है जिसमें कर्म और श्रम के द्वारा उत्थान के अनेक घाटों का निर्माण करना होता है।

संस्कृति—

राष्ट्र का तीसरा अंग जन की संस्कृति है। मनुष्यों ने युग-युगों में जिस सभ्यता का निर्माण किया है वही उसके जीवन की श्वास-प्रश्वास है। विना संस्कृति के जन की कल्पना कबन्धमात्र हैं, संस्कृति ही जन का मस्तिष्क है। संस्कृति के विकास और अभ्युदय के द्वारा ही राष्ट्र की वृद्धि सम्भव है। राष्ट्र के समग्र रूप में भूमि और जन के साथ-साथ जन की संस्कृति का महत्वपूर्ण स्थान है। यदि भूमि और जन अपनी संस्कृति से विरहित कर दिये जाएं तो राष्ट्र का लोप समझना चाहिए। जीवन के विटप का पुष्प संस्कृति है। संस्कृति के सौन्दर्य और सौरभ में ही राष्ट्रीय जन के जीवन का सौन्दर्य और यश अन्तर्निहित है। ज्ञान और कर्म दोनों के पारस्परिक प्रकाश की संज्ञा संस्कृति है। भूमि पर बसने वाले जन ने ज्ञान के क्षेत्र में जो सोचा है और कर्म के क्षेत्र में जो रचा है, दोनों के रूप में हमें राष्ट्रीय संस्कृति के दर्शन मिलते हैं। जीवन के विकास की युक्ति ही संस्कृति के रूप में प्रकट होती है। प्रत्येक जाति अपनी-अपनी विशेषताओं के साथ इस युक्ति को निश्चित करती है और उससे प्रेरित संस्कृति का विकास करती है। इस दृष्टि से प्रत्येक जन की अपनी अपनी भावना के अनुसार पृथक्-पृथक् संस्कृतियां राष्ट्र में विकसित होती हैं, परन्तु उन सब का मूल आधार पारस्परिक सहिष्णुता और समन्वय पर निर्भर है।

जंगल में जिस प्रकार अनेक लता, वृक्ष और वनस्पति अपने अदम्य भाव से उठते हुए पारस्परिक सम्मिलन से अविरोधी स्थिति प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार राष्ट्रीय जन अपनी संस्कृतियों के द्वारा एक-दूसरे के साथ मिलकर राष्ट्र में रहते हैं। जिस प्रकार जल के अनेक प्रवाह नदियों के रूप में मिलकर समुद्र में एक रूपपता प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार राष्ट्रीय जीवन की अनेक विधियां राष्ट्रीय संस्कृति में समन्वय प्राप्त करती हैं। समन्वययुक्त जीवन ही राष्ट्र का सुखदायी रूप है।

साहित्य, कला, नृत्य, गीत, आमोद-प्रमोद अनेक रूपों में राष्ट्रीय जन अपने-अपने मानसिक भावों को प्रकट करते हैं। आत्मा का जो विश्व-व्यापी आनन्द-भाव है वह इन विविध रूपों में साकार होता है। यद्यपि बाह्य रूप की दृष्टि से संस्कृति के ये बाहरी लक्षण अनेक दिखाई पड़ते हैं, किन्तु आंतरिक आनन्द की दृष्टि से उनमें एकसूत्रता है। जो व्यक्ति सहृदय है, वह प्रत्येक व्यक्ति के आनन्द पक्ष को स्वीकार करता है और उससे आनन्दित होता है। इस प्रकार की उदार भावना ही विविध जनों से बने हुए राष्ट्र के लिए स्वास्थ्यकर है।

गांवों और जंगलों में स्वच्छन्द जन्म लेने वाले लोकगीतों में, तारों के नीचे विकसित लोक-कथाओं में संस्कृति का अमित भण्डार भरा हुआ है, जहां से आनन्द की भरपूर मात्रा प्राप्त हो सकती है। राष्ट्रीय-संस्कृति के परिचय काल में उन सबका स्वागत करने की आवश्यकता है।

पूर्वजों ने चरित्र और धर्म विज्ञान, साहित्य, कला और संस्कृति के क्षेत्र में जो कुछ भी पराक्रम किया है उस सारे विस्तार को हम गौरव के साथ धारण करते हैं और उसके तेज को अपने भावी जीवन में साक्षात् देखना चाहते हैं। यही राष्ट्र-संवर्धन का स्वाभाविक प्रकार है। जहां अतीत वर्तमान के लिए भार रूप नहीं है, जहां भूत वर्तमान को जकड़ रखना नहीं चाहता वरन् अपने वरदान से पुष्ट करके उसे आगे बढ़ाना चाहता है, उस राष्ट्र का हम स्वागत करते हैं।

● ● ●

कश्मीरी भाषा

बलजिन्नाथ पण्डित

उत्तरी भारत की सभी भाषाओं की मूल जननी संस्कृत भाषा है। महामुनि यास्क और पाणिनि के समय में जनसाधारण की भाषा संस्कृत थी। जिस भाषा को एक विशाल देश की विशाल जनता बोलती हो, उसके लिए भिन्न-भिन्न प्रदेशों में, भिन्न-भिन्न जातियों में और भिन्न-भिन्न मानव वर्गों में भिन्न-भिन्न ढंग से बोला जाना एक अनिवार्य बात है। उस युग में संस्कृत भाषा की तीन बोलियां प्रचलित थीं। उन में से एक बोली पूर्व में बोली जाती थी जिसका उन आचार्यों ने 'प्राचां' या 'प्राच्येषु' शब्दों से उल्लेख किया है। उत्तर में बोली जाने वाली संस्कृत भाषा की दूसरी बोली का उल्लेख उन्हों ने 'उदीच्यां' या 'उदीच्येषु' शब्दों द्वारा किया है। तीसरी बोली मध्यवर्ती प्रदेशों में बोली जाती थी। यास्क मुनि ने उस का उल्लेख 'आर्येषु' शब्द द्वारा किया है। बोलचाल की भाषा के लिए कालगति के अनुसार परिवर्तनशील होना भी अनिवार्य ही है। संस्कृत भाषा में भी परिवर्तन होते रहे और ई० पू० छठी शताब्दी में बोलचाल की भाषा एक नया रूप धारण कर चुकी थी। भगवान् बुद्ध ने उसी भाषा में अपने उपदेश कहे और कुछ समय तक बौद्ध आचार्य धर्म के प्रचार में उसी का प्रयोग करते रहे। आजकल के भाषाशास्त्री उस भाषा को पाली भाषा कहते हैं। यह भाषा एक अति प्राचीन प्राकृत भाषा है। संस्कृत भाषा ने जब प्राकृत का रूप धारण किया तो वह तीन बोलियों के स्थान पर पांच या छः बोलियों के रूप में प्रकट हो गई। प्राच्य संस्कृत से मागधी प्राकृत का और मध्यवर्ती संस्कृत से शौरसेनी प्राकृत का

जन्म हुआ। उदीच्य संस्कृत से उस प्राकृत ने जन्म लिया जो बाद में बिगड़ कर लहंदी और पंजाबी के रूप में प्रकट हुई। शौरसेनी से हिन्दी और राजस्थानी भाषाएं उत्पन्न हो गईं। मागधी और शौरसेनी के बीच में जो प्राकृत भाषा प्रकट हुई उसे अर्द्धमागधी कहा गया। वर्तमान बिहारी और पूर्वी हिन्दी का जन्म उसी प्राकृत से हुआ। दक्षिण में एक और प्राकृत भाषा प्रकट हो गई जिसे महाराष्ट्री कहा गया। वर्तमान मराठी उसी से बिगड़ कर बनी। मराठी के संसर्ग से बिगड़ी हुई राजस्थानी ही गुजराती कहलाती है। बंगाली, असमिया और उड़ियां भाषाएं मागधी प्राकृत से उत्पन्न हो गईं। इस तरह से पूर्व में आसामी से लेकर पश्चिम में लहंदी तक की सभी भाषाएं संस्कृत भाषा से ही बिगड़-बिगड़ कर बनी हैं। इसी लिए इन भाषाओं को बोलने वाले लोग इन सब की केन्द्रीय भाषा अर्थात हिन्दी को समझ सकते हैं। हिन्दी भाषा को बोलने वाले भी इन सभी भाषाओं को कुछ-कुछ समझ ही लेते हैं। इस तरह से ये सभी भाषाएं एक वर्ग की भाषाएं हैं। परन्तु आश्चर्य की बात यह है कि कश्मीर-मण्डल की भाषा यद्यपि संस्कृत भाषा से निकटता का सम्बन्ध तो रखती है, परन्तु संस्कृत की इन पौत्री, प्रपौत्री भाषाओं के वर्ग की भाषा प्रतीत नहीं होती। हिन्दी भाषी जनता कश्मीरी को सीखे बिना अंशमात्र भी समझ नहीं पाती। इसी तरह कश्मीरी को बोलने वाले लोग हिन्दी भाषा को सीखे बिना समझ नहीं पाते। क्या कश्मीरी भाषा संस्कृतिक भाषा है या नहीं ?

कश्मीरी भाषा के पशु पक्षियों के, अनाजों के, निकट सम्बन्धियों के, महीनों के, शरीर के अंगों के और गृहस्थी में काम आने वाली तथा ललित कला सम्बन्धी वस्तुओं के नाम, क्रिया वाची और संख्या वाची शब्द तथा विशेषण शब्द आदि संस्कृत शब्दों के इतने समीप हैं जितने शायद ही किसी और भाषा के हों। इस कारण कश्मीरी और संस्कृत दोनों भाषाओं के प्रति प्रेम और श्रद्धा रखने वाले विद्वान कश्मीरी भाषा को उदीची संस्कृत की प्रपौत्री ठहराने का यत्न करते हैं। वे महानुभाव संस्कृत की प्रपौत्री होना कश्मीरी भाषा के लिए गौरव का कारण समझते हैं। वर्तमान युग के कुछ एक चिन्तक यह कहते हैं कि कश्मीरी भाषा का जन्म हिब्रू भाषा से हुआ है। विचित्र प्रकार की इस क्लिष्ट कल्पना से सहमत होने वाले लोगों की संख्या भी बहुत है। वैसे कश्मीरी भाषा को न जानने वाली जनता को यह भाषा ध्वनिसाम्य के कारण पश्तो से मिलती जुलती प्रतीत होती है।

वर्तमान युग विज्ञान का युग है, श्रद्धा का युग नहीं। इस युग में प्रत्येक सिद्धान्त को विज्ञान की कसौटी पर परख लिया जाता है। भाषाओं के अध्ययन को वैज्ञानिक ढंग से चलाने वाले भाषाशास्त्री कहलाते हैं। जम्मू-कश्मीर राज्य में आज तक केवल एक महानुभाव ऐसे हुए हैं, जिन्हें भाषाशास्त्री कहा जा सकता है। वे महानुभाव हैं

डॉ० सिद्धेश्वर वर्मा उन के जीवन का मुख्य कार्यक्षेत्र वैज्ञानिक ढंग से भाषाओं का अध्ययन करना ही रहा है और उन्होंने जीवन का अधिक भाग जम्मू में संस्कृत अध्यापक के रूप में बिताया है। आप उनसे संस्कृत को पढ़ें तो आप को ऐसा प्रतीत होगा, कि कहीं-कहीं महामुनि पाणिनि जैसे वैयाकरण भी वैज्ञानिक न बन कर श्रद्धालु और परम्परा के अनुयायी बने हैं। तो हमें इस युग में कश्मीरी भाषा के उद्‌गम के विषय में भी वैज्ञानिक ढंग से ही सोचना चाहिए। हमें श्रद्धा और रुचि को एक ओर रख कर भाषा शास्त्र के नियमों को दृष्टिगोचर रख कर ही इस समस्या पर विचार विमर्श करना चाहिए।

भाषा शास्त्र के मुख्य विषय छ: होते हैं—(१) ध्वनि विज्ञान, (२) शब्द विज्ञान, (३) रूपभेद विज्ञान, (४) वाक्य विज्ञान, (५) अर्थ विज्ञान और (६) इतिहास तत्व विज्ञान। किसी भी भाषा के उद्‌गम और विकास का अध्ययन करना हो तो उसके लिए यह आवश्यक होता है कि उस भाषा की स्वररूप और व्यञ्जन रूप ध्वनियों पर विचार किया जाए। संसार में भाषाओं की कई एक जातियां हैं। आर्यभाषाएं, मंगोलभाषाएं, द्राविड भाषाएं इत्यादि भिन्न-भिन्न जातियों से सम्बन्ध रखती हैं। भाषाओं की जातियों में प्राय: प्रत्येक जाति की भाषाएं भिन्न-भिन्न वर्गों और उपवर्गों में बटी रहती हैं। तो परीक्षणीय भाषा की स्वरात्मक और व्यञ्जनात्मक ध्वनियों के प्रयोग, उच्चारण, परिवर्तन इत्यादि के विषय में यह देखा जाता है कि उस भाषा की ध्वनियों की ये विशेषताएं किस-किस भाषा की उन विशेषताओं के साथ अधिक मिलती जुलती हैं। इस तरह से ध्वनिविज्ञान की समानता के आधार पर भाषा का वर्गीकरण किया जा सकता है। मानव जीवन के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध रखने वाले पदार्थों के नामों की परीक्षा को शब्द विज्ञान कहते हैं। शरीर के अंगों के, निकट सम्बन्धियों के, भौगोलिक वातावरण के, पशुओं और पक्षियों के, अनाजों, फलों और सब्जियों के, अन्य खाद्य, पेय आदि पदार्थों के, वारों, मासों, ऋतुओं के, गृहस्थी और कृषि आदि की उपयोगी वस्तुओं के तथा गीत, नृत्य आदि कलाओं के नामों तथा मुख्य-मुख्य क्रिया पदों, विशेषणों आदि के वाचक शब्दों का अध्ययन शब्द विज्ञान का विषय होता है। प्राय: एक जाति की और एक वर्ग की भाषाओं के ये शब्द परस्पर मिलते जुलते हैं। इस समय भी उत्तरी भारत की, ईरान की और यूरोप की भाषाओं के ये शब्द परस्पर बहुत मिलते जुलते हैं, क्योंकि ये सभी भाषाएं आर्य भाषाएं हैं। एक जाति से सम्बन्ध रखने वाली भाषाएं अवश्य ही शब्द विज्ञान में परस्पर मिलती जुलती हैं। ईरान की भाषा आर्य जाति से सम्बन्ध रखती है, परन्तु इस भाषा में भिन्न जातीय अरबी

बहुत प्रचुरता में समा गए हैं। इसी तरह दक्षिण भारत की द्राविड भाषाओं में संस्कृत भाषा के शब्द बहुत समा गए हैं। परन्तु फिर भी जीवन के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध रखने वाले शब्द प्रत्येक भाषा के अपने ही जातीय शब्द चलते रहते हैं। प्राय: एक जाति की भाषाओं के भिन्न-भिन्न वर्गों की या उपवर्गों की भाषाओं में ध्वनि विज्ञान में बहुत समानता रहती है। इसी कारण भाषा के वर्गीकरण में ध्वनिविज्ञान शब्द विज्ञान की अपेक्षा बहुत अधिक महत्त्व रखता है।

प्रत्येक भाषा के संज्ञा सर्वनाम आदि शब्दों के लिंग, वचन और कारक आदि के आधार पर अनेक प्रकार के रूप बनते हैं। इसी तरह काल, पुरुष, वचन, वाच्य आदि के आधार पर क्रिया पदों के भी अनेक प्रकार के रूप बना करते हैं। भाषा के इस तत्त्व के विज्ञान को रूपभेद विज्ञान कहा जा सकता है। प्राय: एक वर्ग की भाषाओं में शब्दों के रूप भेद एक ढंग से बनते हैं। इस तत्त्व की परीक्षा के आधार पर भी परीक्षणीय भाषा के उद्गम और विकास के विषय में निश्चय किया जा सकता है। भाषा शास्त्र का चौथा तत्त्व होता है वाक्य विज्ञान। प्रत्येक भाषा में वाक्य रचना का अपना ढंग होता है और यह ढंग कभी-कभी अन्य भाषाओं के ढंग से मिलता जुलता है। जिन भाषाओं का यह तत्त्व परस्पर मिलता जुलता हो, उनको एक वर्ग के भीतर गिना जाता है। शब्दों और अर्थों के परस्पर संकेत को और भिन्न-भिन्न युगों में तथा भिन्न-भिन्न प्रदेशों में शब्दों के इस अर्थसंकेत में आने वाले परिवर्तन आदि को अर्थविज्ञान में गिना जाता है। भाषा के अध्ययन में अर्थ विज्ञान भी महत्त्व रखता है। इस अर्थविज्ञान के आधार पर भाषा को बोलने वाले लोगों के इतिहास पर कुछ प्रकाश पड़ सकता है। क्योंकि शब्दों के अर्थ के परिवर्तन का कारण ऐतिहासिक घटनाओं के प्रभाव हुआ करते हैं। भाषाओं के उपरोक्त पांच तत्त्वों की समानता और विषमता के आधार पर उन्हें बोलने वाले मानव समाजों के अज्ञात इतिहास के विषय में अनुमान किए जा सकते हैं। इस तरह से भाषा के तत्त्वों से इतिहास के तत्त्वों का निष्कर्ष निकालने को इतिहासतत्त्व विज्ञान कहा जा सकता है। यह भाषा शास्त्र का छठा विषय है।

भाषाशास्त्र के नियमों के आधार पर भारत, अफगानिस्तान, ईरान आदि देशों की भाषाओं का सूक्ष्म और सविस्तर अध्ययन आज तक केवल जार्ज ग्रियर्सन ने किया। उन्होंने इन सभी भाषाओं के उपरोक्त तत्त्वों का विशेष अध्ययन करके जिन निष्कर्षों की घोषणा की उनमें से कुछ नीचे दिए जा रहे हैं—

(१) पूर्व में आसाम से लेकर पश्चिम में आयरलैंड तक की प्राय: सभी भाषाएं आर्य जाति की भाषाएं हैं। इनमें बलोचिस्तान के एक खण्ड में बोली जाने वाली

ब्राहुई भाषा और हंगरी की भाषा आर्य भाषाओं के समुद्र के बीच में द्वीपों की तरह विद्यमान हैं। क्योंकि ये दोनों भाषाएं आर्य भाषाएं नहीं हैं।

(२) आर्य भाषाओं के मुख्य दो वर्ग हैं—पश्चिमी वर्ग और पूर्वी वर्ग।

(३) पूर्वी वर्ग की भाषाओं के तीन उपवर्ग हैं—हिन्दी आर्य वर्ग, ईरानी वर्ग और दरदी वर्ग। ऐसा प्रतीत होता है, कि दक्षिणपूर्व में फैलने वाले आर्य लोग काफी समय तक हिन्दुकुश पर्वत के आसपास रहते रहे। वहां से वे तीन वर्गों में बंट गए। एक वर्ग दक्षिण की ओर बढ़ कर ईरान तक फैल गया, दूसरा वर्ग खैबर के मार्ग से होता हुआ उत्तरी भारत में आ बसा और तीसरा वर्ग चितराल के मार्ग से प्रवेश करके गिलगित्त, कश्मीर और पंजाब के उत्तर-पश्चिमी खण्ड में तथा अफगानिस्तान के उत्तर पूर्वी खण्ड में छा गया। इस तीसरे वर्ग को दरदी वर्ग या पिशाच वर्ग कहा जा सकता है।

(४) कश्मीरी भाषा आर्य भाषा है और पैशाच वर्ग की भाषा है। क्योंकि यह भाषा ध्वनिविज्ञान की दृष्टि से दरदी पैशाची भाषाओं के साथ बहुत मिलती जुलती है।

(५) कश्मीरी भाषा का साक्षात् सम्बन्ध दरदी भाषाओं के साथ है और परम्परित सम्बन्ध हिन्दी आर्य वर्ग की भाषाओं के साथ है।

संस्कृत साहित्य में पैशाची भाषा के और उस भाषा में गुणाढ्य द्वारा लिखी गई बृहत् कथा के बहुत उल्लेख आए हैं। वह गुणाढ्य किधर का था, उसकी पैशाची भाषा कहां बोली जाती थी और यह भाषा क्या थी और कैसी थी—ये समस्याएं ऐसी हैं जो सम्भवत: निश्चित रूप से कभी भी सुलझने वाली नहीं हैं। वर्तमान युग में पैशाची भाषा में लिखी हुई कोई भी वस्तु उपलब्ध नहीं हो रही है। गुणाढ्य की बृहत् कथा के तीन संस्कृत अनुवाद मिलते हैं। वे हैं—बुद्ध स्वामी का बृहत्कथा श्लोक संग्रह, क्षेमेन्द्र की बृहतकथामञ्जरी और सोमदेव का कथा सरित् सागर। बुद्ध स्वामी नेपाली थे और क्षेमेन्द्र तथा सोमदेव कश्मीरी थे। इससे यह बात सम्भव है कि पैशाची भाषा किसी उत्तरी प्रदेश में ही कभी बोली जाती हो। महाभारत में पिशाचों और दरदों का उल्लेख कम्बोजों के साथ आता है। कम्बोज काबुल को कहते थे। तदनुसार पिशाच और दरद प्रान्त काबुल के साथ साथ जुड़े हुए रहे होंगे। वर्तमान युग में भी कश्मीर मण्डल के उत्तर में स्थित प्रदेश को दरदिस्तान कहते हैं। यह सम्भव है कि दरद और पिशाच किसी समय में कश्मीर के उत्तर में बसते रहे होंगे।

कश्मीर मण्डल का प्रारम्भिक इतिहास नीलमत पुराण में लिखा हुआ है। तदनुसार प्रागैतिहासिक युग में इस स्थान पर एक विशाल पर्वतीय झील थी। कश्यप

के प्रयत्न से पहाड़ को एक स्थान से तोड़ा गया। झील का जल बह निकला और कश्मीर मण्डल की भूमि सूख गई। यहां चश्मों और बर्फीले पर्वतों से जगह-जगह नदियां निकल कर बहने लगीं। तदनन्तर कश्यप ने उत्तर भारत से चारों वर्णों के लोगों को लाकर यहां बसाया। परन्तु वे लोग यहां सुख से रह नहीं सके। क्योंकि शीतकाल के आरम्भ में यहां पिशाच उपद्रव मचाया करते थे और लोगों को भाग जाना पड़ता था। कुछ समय तक भारतीय आर्य यहां आकर छः छः मास रह कर लौट जाया करते थे। अन्त में चन्द्रदेव नामक एक ब्राह्मण ने नील नामक नाग देवता की उपासना की और उसने उसे पिशाचों को बलि देकर शान्त भाव में रखने का विधान बताया। अगले वर्ष लोगों ने उस विधान के अनुसार जब पिशाचों को शान्त भाव में रख लिया, तो उन्हें शीतकाल में यहां से भागना नहीं पड़ा। नीलमत पुराण में और राजतरंगिणी में पिशाचों को भूतों में गिना गया है, मनुष्यों में नहीं। प्राचीन काल में जो लोग किसी जाति को युद्धों द्वारा बहुत सताया करते थे, वे लोग बाद में उस जाति की दृष्टि में भूतों में गिने जाते थे। भारतीय आर्यों की दृष्टि में ईरान के अहुर असुर अर्थात भूत माने गए और उन अहुरों की दृष्टि में भारत के देव जाति के आर्य देव अर्थात जिन माने गए।

पिशाचों के विषय में नीलमत और राजतरंगिणी के आधार पर हम इतिहास के निम्नलिखित तत्त्व का निश्चय कर सकते हैं—ज्यों ही भारत के आर्य कश्मीर में आकर बस गए, त्यों ही उत्तर में स्थित प्रदेशों से पिशाच नाम के आर्य भी इस देश में घुस आए। ग्रीष्म में तो भारतीय आर्य बलपूर्वक इस देश पर अधिकार जमाते रहे, परन्तु शीत काल में उत्तरीय पिशाच अधिक बल दिखाते। क्योंकि पर्वतीय और शीतल प्रदेशों के निवासी होने के कारण वे शीतकाल में उष्ण प्रदेशवासी आर्यों को परास्त कर देते। बाद में किसी आदिम निवासी नाग जाति के मुखिया नील ने इन पिशाचों और भारतीय आर्यों में परस्पर समझौता करवा दिया। भारतीय आर्यों ने पिशाचों को भूमि की उपज का एक भाग देना स्वीकार कर लिया। उन्होंने भारतीय आर्यों की भूमि पर उपज का भाग लेकर कृषि करना मान लिया। इस तरह से शासक भारतीय आर्य भूस्वामी बने रहे और पिशाच लोग कृषक बन गए और दोनों जातियां परस्पर सहयोग कर रहने लगीं।

बलि शब्द के कई अर्थ होते हैं और उनमें एक प्रसिद्ध अर्थ खेती की उपज भी है। रामायण तथा महाभारत काल में इस अर्थ में बलि शब्द का प्रयोग होता था। आक्रमणकारी होने के कारण ये पिशाच लोग भारतीय आर्यों के लिऐ भय का कारण बने रहे, इसी कारण भारत में इन्हें दरद भी कहा गया। दरद का अर्थ होता है भय देने वाला—'दरं, भयं ददातीति दरदः।'' बहुत सम्भव है कि दरद स्थान के ऊबड़ खाबड़ पर्वतीय प्रदेशों के पिशाचों ने कश्मीर की समतल भूमि को बहुत पसन्द किया हो और गर्म प्रदेशों की अधिक उपजाऊ भूमि के निवासी भारतीय जनता ने

इसे इतना पसन्द नहीं किया हो। सम्भवत: इसी कारण से उत्तरी भारत से केवल शासक वर्ग, ब्राह्मण वर्ग और व्यापारी वर्ग ही आया हो और कृषकों और श्रमिकों का वर्ग दरदस्थान से ही आया हो। साधारण जनता में प्राधान्य कृषकों और श्रमिकों का ही होता है। इस कारण यह बहुत सम्भव है कि कश्मीर में उस युग में अधिकांश दरद और पिशाच ही आकर बसे हों और भारतीय आर्य अतीव अल्पसंख्या में यहाँ आये हों। इसी कारण से कश्मीरी भाषा में पैशाची अंशों की ही प्रधानता रही हो और भारतीय आर्य अंश अप्रधान बन गये हों। मूल दरदी भाषा ने बिगड़ कर कालान्त में पैशाची प्राकृत का रूप धारण किया होगा और वह भी बिगड़ कर पैशाच अपभ्रंश के रूप में परिणत हो गई होगी। उसी पैशाच अपभ्रंश का उल्लेख बिल्हण जैसे कवियों ने 'देश-भाषा' नाम से किया होगा। दसवीं–ग्यारहवीं शताब्दी के मध्य में कश्मीर में आचार्य अभिनव गुप्त प्रकट हुए। उन्होंने तन्त्र सार, परात्रीशिका विवरण आदि ग्रन्थों में कहीं-कहीं इस देश भाषा में कही गई सन्तों और सिद्धों की उक्तियों के उद्धरण प्रमाण रूप में दिए हैं। बहुत सम्भव है कि ये उद्धरण पैशाच अपभ्रंग के उदाहरण हों। जिस पैशाची का उल्लेख प्राकृत के वैयाकरणों ने किया है वह मुख्य पैशाची की एक विशेष बोली थी, जिसे चूलिका पैशाची कहा करते थे। वह बृहत्कथा की पैशाची से भिन्न ही कोई प्राकृत बोली थी। मुख्य पैशाची के विषय में बहुत सम्भव यही है, कि वह मूल दरदी से बिगड़ कर बनी हो और ईसवी सन् की प्रथम साहस्री में उसे कश्मीर से चितराल तक बोला जाता हो। सम्भवत: इसी कारण से कश्मीर ही के क्षेमेन्द्र जैसे विद्वान उस भाषा का सफल अनुसन्धान कर, बृहत्कथा का संस्कृत अनुवाद कर सके।

अनुमानों के आधार पर कश्मीरी भाषा के उद्‌गम के विषय में यही अधिक सम्भावना है कि इसका जन्म पैशाच अपभ्रंश से हुआ होगा और उसकी उत्पत्ति पैशाची प्राकृत से हुई होगी। वह प्राकृत भाषा दरदी भाषा से बिगड़ कर बनी होगी और दरदी भाषा भारतीय आर्य भाषा की तरह हिन्दी ईरानी सांझी भाषा से उत्पन्न हुई होगी। इस तरह से दरदी भाषा और वैदिक संस्कृत भाषा का सम्बन्ध बहनों का सा है। कश्मीरी और हिन्दी भाषाओं का सम्बन्ध इस तरह से तीसरी चौथी पीढ़ी की मौसेरी बहनों जैसा सिद्ध होता है। यही कारण है कि कश्मीरी भाषा को न समझने वाले लोग जब इस भाषा को सुनते हैं, तो उन्हें यह भाषा पश्तो भाषा जैसी प्रतीत होती है। संस्कृत भाषा के साथ जो गहरा सम्बन्ध कश्मीरी भाषा का है वह बहुत पुराना, कई पीढ़ियों का परम्परा सम्बन्ध है और भाषा शास्त्र के विद्वान् महानुभावों के मत में इस भाषा का निकटतम सम्बन्ध शेष सभी दरदी पिशाची भाषाओं के साथ ही है, भारतीय आर्य भाषाओं के साथ नहीं।

जो लोग कश्मीरी भाषा का उद्गम हिब्रू भाषा से मानते हैं, वे किसी विज्ञान का आश्रय न लेकर और तिनकों का सहारा लेकर अपने मन की भावना को सन्तुष्ट करने का यत्न करते हैं। उनके विचार में किसी महानुभाव के नाम के साथ आदर-सूचक शब्द "जू" को जोड़ना यहूदियों की देन है। परन्तु वे लोग इतना नहीं जानते कि कश्मीरी शब्द "जू" का मूल संस्कृत शब्द 'जीव' या दरदी भाषा का कोई समकक्ष शब्द हो सकता है। यह 'जू' शब्द केवल कश्मीरी भाषा में ही प्रयुक्त नहीं होता। महाकवि सूरदास की ब्रज भाषा में इसका बहुत बार प्रयोग किया गया है। हिन्दी का 'जी' शब्द भी इस 'जू' शब्द का समकक्ष शब्द है। दोनों का मूल संस्कृत जीव शब्द है। इस 'जू' शब्द के अतिरिक्त वे लोग कश्मीरी जनता के ढीले वेष के और कश्मीरियों के सर्व साधारण चरित्र के आधार पर यह कहते हैं कि इस जाति का जन्म प्राचीन यहूदी जाति में हुआ है। इस विषय में वे कुछ एक यूरोपीय पर्यटकों के वचनों का भी आसरा लेते हैं। इस विषय में जो विचारनीय बात है, वह यह है कि सांस्कृतिक क्षेत्र में भिन्न-भिन्न जातियों का परस्पर आदान-प्रदान अनेक ढंगों से हुआ करता है। केवल मात्र कुछ एक अंशों की समानता के ही आधार पर किसी जाति का जननी-पुत्री का सम्बन्ध किसी अन्य जाति से जोड़ना विद्वानों और बुद्धिमानों का काम नहीं। कश्मीरी जनता की संस्कृति के अनेकों अंश मध्य एशिया के मंगोल लोगों से, रूस के आर्य लोगों से, ईरानी जनता से और अफगानों तथा लद्दाख के भोटों से मिलते-जुलते हैं। कश्मीरियों की आकृति और उनके सिर की बनावट निश्चय से आर्य जाति से ही सम्बन्धित है, यहूदी जाति से नहीं। anthropology के आधार पर निश्चय पूर्वक यह कहा जा सकता है कि कश्मीर के लोग मूलतः आर्य हैं, हिब्रू नहीं हैं। दरद भी आर्य ही थे और हिन्दी आर्य भी आर्य ही थे। इस कारण कश्मीरी भाषा निःसन्देह एक आर्य भाषा है। यह बात और है कि भारत की अन्य भाषाओं का संस्कृत भाषा के साथ घना सम्बन्ध हैं और संस्कृत भाषा उन भाषाओं की मूल जननी है, परन्तु कश्मीरी भाषा का वैसा सम्बन्ध संस्कृत भाषा के स्थान पर उस भाषा की बहन अर्थात प्राचीन दरदी आर्य भाषा के साथ है जो भाषा कश्मीरी भाषा की मूल जननी है।

कश्मीरी भाषा की भी कई एक बोलियां और उपबोलियां हैं। इसकी मुख्य बोलियां तीन हैं—(१) कश्मीरी (२) किश्तवाड़ी और (३) भद्रवाही। कश्मीरी बोली कश्मीर की घाटी में बोली जाती है और शेष दो क्रमशः किश्तवाड़ और भद्रवाह में। भद्रवाह में भद्रवाही के साथ-साथ ही डोगरी भाषा भी बोली जाती है। रामबन और डोडा में भी एक विशेष प्रकार की भद्रवाही और डोगरी दोनों भाषाओं का प्रयोग होता है। मुजफ़राबाद में कुछ ही लोग कश्मीरी बोलते हैं। वहां जनसाधारण

की भाषा पश्चिमी पंजाबी है। यही हाल राजौरी और पुंछ का है। इन तीन प्रदेशों का ऐतिहासिक सम्बन्ध कश्मीर के साथ बहुत अधिक रहा है, परन्तु भाषा के विषय में इनका सम्बन्ध कश्मीर की अपेक्षा पंजाब के ही साथ अधिक घना हैं। इसके विपरीत किश्तवाड़ और भद्रवाह आदि प्रदेशों का ऐतिहासिक सम्बन्ध सदा डुग्गर देश से रहा है, परन्तु भाषामय सम्बन्ध अभी तक कश्मीर ही के साथ है। कश्मीर की बोली की भी तीन अवान्तर बोलियां इस समय उपलब्ध होती हैं। वे हैं—(१) कमराज़ी जिसे श्रीनगर से उत्तर और पश्चिम के प्रदेशों में बोला जाता है और जिसका मुख्य केन्द्र सोपुर है, (२) श्रीनगर की बोली और (३) मराज़ी, जिसे कश्मीर के दक्षिणी और दक्षिण-पूर्वी प्रदेशों में बोला जाता है और जिसका केन्द्र अनन्तनाग है। कश्मीरी की यह अवान्तर बोली कई अंशों में किश्तवाड़ी बोली के समीप है।

जार्ज ग्रियर्सन के अनन्तर आज तक किसी महानुभाव ने भारत की इन सीमान्त भाषाओं के विषय में विशेष अनुसन्धान कार्य नहीं किया। श्री ग्रियर्सन के द्वारा किए हुए काम का आश्रय लेकर श्री वर्मा ने कश्मीर की पहाड़ी भाषाओं और बोलियों पर कुछ सराहनीय अनुसंधान कार्य किया। परन्तु उस कार्य का उपयोग करने वाला और उसे आगे ले चलने वाला विद्वान् अभी तक कोई देखने में नहीं आया। श्री ग्रियर्सन और श्री सिद्धेश्वर वर्मा ने जो काम किया है, उसे आगे ले जाने की बहुत बड़ी आवश्यकता है और भाषा शास्त्रियों के लिए कश्मीरी भाषा एक बहुत बड़ा कार्यक्षेत्र बन सकता है। परन्तु यह काम बहुत बड़ा है। यह किसी अकेले मनुष्य का काम नहीं। इसके लिए परिश्रमी विद्वानों के एक वर्ग की आवश्यकता है। ऐसे कार्य को सरकार, कोई विश्वविद्यालय या किसी सांस्कृतिक संस्था को हाथ में लेना चाहिए।

• • •

डोगरी
और
उसकी नई साहित्यिक चेतना

प्रो० रामनाथ शास्त्री

डुग्गर, डोगरे और डोगरी—इन तीन शब्दों के तिकोन में एक ऐसी जाति का इतिवृत्त निहित है जिसने भारतवर्ष के राजनयिक तथा साँस्कृतिक इतिहास में चिर-स्मरणीय योगदान दिया है। जम्मू-कश्मीर राज्य की स्थापना का श्रेय डोगरों को है। इस राज्य की उत्तरी सीमाओं को भारत की प्राचीन सीमारेखाओं तक बढ़ाना और लद्दाख, करगिल, स्कर्दू, गिलगित्त, हुंजा, नगर, चितराल, जैसे दुर्गम पर्वतीय प्रदेशों को मातृ भू भारत से दुबारा अभिन्न करके जोड़ने का ऐतिहासिक चमत्कार डोगरा सैनिकों ने अपने तरुण रक्त से, उन प्रदेशों की हिम-शिलाओं पर अंकित किया है। देश-विभाजन के बाद आज इस अत्यन्त महत्वपूर्ण भूभाग का काफी अंश युद्ध-विराम रेखा के कारण पाकिस्तान के अधिकार में चला गया है।

देश की सेनाओं को डुग्गर के वीर तथा बलिदानी योद्धाओं पर सदा गर्व रहा है और आगे भी रहेगा। जनरल जोरावरसिंह से लेकर मेजर पूर्णसिंह (अक्तूबर १९६५ में स्यालकोट में वीरगति प्राप्त) तक, असंख्य ओजस्वी गाथाएं डुग्गर के बलिदानी तरुणों ने लिखी-गाई हैं।

शौर्य-वीर्य की इन सुनहरी गाथाओं के अतिरिक्त डुग्गर ने भारतीय चित्रकला को, कांगड़ा, गुलेर, बसोहली, चम्बा, जम्मू तथा कई अन्य कला-केन्द्रों में विकसित होने वाली 'पहाड़ी कलम' की साधना के रूप में जो अमर उपहार दिए हैं, उनकी आभा से आज संसार के प्राय: सभी देशी-विदेशी कला-भवन आलोकित-मंडित हो रहे हैं। भारत की मध्य-युगीन चित्रकला-साधना में इस 'पहाड़ी कलम' को वही स्थान प्राप्त है जो मौलिक-हार में कौस्तुभमणि को मिलता है।

इन्हीं डोगरों की यह महत्वपूर्ण जाति आज भारत के उत्तरी सीमांत के तीन राज्यों—जम्मू-कश्मीर, हिमाचल (अब कांगड़ा-कुल्लू सहित विशाल हिमाचल) तथा नए पंजाब (के जिला होशियारपुर तथा गुरदासपुर की उत्तरी तहसीलों में) बटी हुई है। इस विशाल प्रदेश में अनेक पर्वतीय बोलियां प्रचलित हैं जिनका अभी तक केवल सतही सर्वेक्षण मात्र हुआ है। भाषा-शास्त्र तथा भाषा-विज्ञान की दृष्टि से इनका अध्ययन करने के लिए न अभी व्यापक रुचि जागी है और न ही उसके लिए उपयुक्त साधन सुलभ हुए हैं। इन सभी बोलियों में डोगरी को प्रमुख कहने के कुछ ठोस आधार हैं। पहला यह कि देश के इस उत्तरी सीमांत की बोलियों में डोगरी ही एक ऐसी भाषा है जिसमें एक विकसित तथा पुष्ट साहित्यिक साधना का उन्मेष हुआ है जिसकी प्रतीक है जम्मू की, १९४४ ई० में स्थापित, डोगरी संस्था नाम की एक सभा। संस्था के तत्वावधान में, गत बाईस वर्षों में, डोगरों की धरती पर ऐतिहासिक महत्व रखने वाला एक साहित्यिक तथा सांस्कृतिक नवजागरण हुआ है। डोगरी की विशिष्टता का दूसरा कारण यह है कि कुछ विद्वान् गत कुछ वर्षों से, इस भाषा की ध्वनियों तथा अन्य तत्वों के विषय में भाषा-शास्त्रीय तथा भाषा-विज्ञानीय दृष्टि से अनुसंधान कर रहे हैं। भाषा सम्बन्धी इसी वैज्ञानिक अनुसंधान-रुचि तथा प्रवृत्ति के कारण दो वर्ष हुए जम्मू में 'डोगरी रिसर्च इन्स्टीटयूट' नाम के अनुसंधान-केन्द्र की स्थापना हुई थी। अपनी सहोदराओं में डोगरी की महत्ता का तीसरा कारण है—डोगरी लोक-साहित्य की बिखरी सम्पत्ति को एकत्र करने की क्रियात्मक ईहा। इस सम्बन्ध में गत दो दशकों (१९४४-६४ ई०) में महत्वपूर्ण कार्य हुआ है जिसके परिणामस्वरूप इस समय तक निम्न प्रकाशन प्रकाश में आए हैं—

१—'इक हा राजा' (लोक कथा संग्रह) प्रकाशक डोगरी संस्था, जम्मू।

२—खारे मिट्ठे अत्थरूं (विवाह-कालीन लोकगीत) प्रकाशक डोगरी संस्था, जम्मू।

३—डोगरी लोक-कत्थां (संपा० श्री बंसीलाल एम० ए०)

४—पौंगरां (प्रका० डोगरी मण्डल, जम्मू) (जम्मू के देवस्थानों के लोक-आख्यान)

५—डोगरी कहावत कोष (श्री तारा स्मैलपुरी—प्रकाशक जम्मू कश्मीर अकादमी)

६—नमीं चेतना (त्रैमासिक पत्रिका) इसके चार अंकों में डोगरा लोक-संस्कृति सम्बन्धी सुन्दर सामग्री प्रकाशित हुई थी। संरक्षण-जल के अभाव में यह पत्रिका सूख गई।

७—Shadow and Sunlight—By Dr. Karan Singh (Governer J & K State)

डोगरी के इकत्तीस गीतों का अभिराम संग्रह, जिसमें गीतों के अंग्रेज़ी तथा हिन्दी भावानुवादों के साथ-साथ मूल स्वरों की संगीत-लिपि (Notation) भी दी गई है।

८ ९—डोगरी लोकगीत (भाग १-२ जम्मू-कश्मीर अकैदमी द्वारा प्रकाशित)

लोक-साहित्य के इस संग्रह-कार्य में डोगरी संस्था के प्रयत्न निरन्तर चल रहे हैं। इस कार्य में जम्मू कश्मीर अकादमी भी महत्वपूर्ण योग देने लगी है। गत तीन चार वर्षों में अकादमी ने भी जम्मू के पर्वतीय प्रदेशों से अनेक लोकगीतों को टेप रिकार्डर की सहायता से इकट्ठा करने का प्रयत्न किया है जिससे उन गीतों की मूल धुनें भी सुरक्षित हो सकें। ई० १९६३ में अमेरिका की पैनसिलवेनिया यूनिवरसिटी में संस्कृत विभाग के अध्यक्ष डा० ब्राऊन (Brown) की शिष्या, जापान देशीय श्रीमती नोरिका मायेदा, डुग्गर की लोक-कथाओं का तुलनात्मक अध्ययन करने के लिए छात्रवृत्ति लेकर जम्मू आई थीं। दो महीनों में उन्होंने संस्था के कुछ कार्य-कर्ताओं के सहयोग से चार सौ लोक कथाएं इकट्ठी कीं। उनके टेप रिकार्डर ने इस काम में उनकी बड़ी सहायता की। इधर कुछ लोग व्यक्तिगत रूप से भी इस संग्रह-कार्य में लगे हुए हैं। इन में श्री तारा स्मैलपुरी जिनके 'कहावत कोष' का उल्लेख ऊपर किया गया है, तथा रिसर्च इनस्टीट्युट के कार्यालय-मंत्री श्री चरणसिंह उल्लेख योग्य हैं।

अनुसंधान कार्य धीरे धीरे बढ़ रहा है। इस समय जम्मू कालेज के प्रो० बाल कृष्ण शर्मा डोगरी तथा पंजाबी के तुलनात्मक अध्ययन पर कार्य कर रहे हैं। पुंछ कालेज के श्री सत्यपाल, तहसील बिलावर में प्रयुक्त होने वाली कृषि-शब्दावली का संग्रह कर रहे हैं। जम्मू महिला कालेज़ की अध्यापिका प्रो० शक्ति शर्मा डुग्गर की लोक संस्कृति में नारी के विविध रूपों का अध्ययन कर रही हैं। जम्मू के मनीषी विद्वान श्री केदारनाथ शास्त्री, जो केन्द्रीय पुरातत्व विभाग में असिस्टैंट डायरेक्टर के पद से अवकाश प्राप्त करके, अपने घर लौट आए हैं, जम्मू प्रान्त में डुग्गर की

वास्तु तथा मूर्ति कला सम्बन्धी सामग्री का अध्ययन कर रहे हैं। अवकाश प्राप्त अध्यापक श्री विश्वानाथ खजूरिया ने डुग्गर की नृत्य परम्परा के विविध रूपों पर उपयोगी जानकारी इकट्ठी की है। जम्मू के ख्याति प्राप्त कलाकार श्री संसारचन्द्र तथा डोगरा आर्ट गैलरी के क्यूरेटर (Curator) श्री विद्यारत्न ने जम्मू तथा बसोहली के प्राचीन चित्रकला केन्द्रों के सम्बन्ध में ज्ञानवर्धक लेख लिखे हैं। श्री धर्मचन्द तथा श्री सूरज सराफ जैसे पत्रकारों ने, समय समय पर डोगरा-संस्कृति के विविध पहलुओं पर लेखों द्वारा महत्वपूर्ण प्रकाश डाला है। पहाड़ी चित्रकला के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखने वाले विद्वानों में लन्दन के W. C. Archer, भारत के श्री रन्धावा और ख्यातिलब्ध पत्रकार तथा साहित्यिक श्री मुल्कराज आनन्द का नाम उल्लेखनीय है। इन सभी को 'डोगरा आर्ट गैलरी जम्मू' से महत्वपूर्ण सहायता और सामग्री प्राप्त हुई जिसकी स्थापना का श्रेय डोगरों की इसी सांस्कृतिक नव जागृति को है।

इस संक्षिप्त विवरण से स्पष्ट है कि रियासत की शीत कालीन राजधानी जम्मू, डोगरी भाषा, साहित्य और संस्कृति सम्बन्धी साधना का एक महत्वपूर्ण केन्द्र बन गया है। इसके अतिरिक्त, अपनी सहोदरा बोलियों में डोगरी की प्रतिष्ठा का दूसरा दृढ़ आधार है इस भाषा में नई साहित्यिक चेतना का क्रमिक विकास। गत चार दशकों (१९२५-६६) के अल्प समय में इस भाषा ने प्रायः साहित्यिक शून्य से उठकर अपने सभी अंगों में पोषण प्राप्त किया है। डोगरी भाषा की लिखित साहित्यिक परम्परा के पद-चिह्न खोजने के सम्बन्ध में, गतवर्षों में मुझे कुछ काम करने का अवसर मिला है। इस सिलसिले में जो सामग्री मुझे उपलब्ध हुई उसे मैंने 'नीहारिका' नाम की पुस्तक में इकट्ठा किया है। इस पुस्तक का प्रकाशन ई० १९५९ में जम्मू कश्मीर अकादमी की ओर से हुआ था। इस पुस्तक के अनुशीलन से पाठक को यह अनुमान ज़रूर होता है कि डोगरी के ये पुराने आंशिक काव्य-रूप किसी टूटे हुए हार के अनमोल मोती हैं। अतीत तथा उपेक्षा के अन्धकार में खोए हुए, इस हार के, अन्य मोतियों को खोजने का समुचित प्रयास अभी हुआ नहीं। जिन कवियों की रचनायें 'नीहारिका' में दी गई हैं उनके नाम हैं—कवि देवीदत्ता (या दत्तु), शिवराम, त्रिलोचन, रुद्रदत्त, बामदेव, पं० गँगाराम, लाला हरदत्त और हरदत्त। इनमें कवि दत्तु, आज से २५० वर्ष पूर्व जम्मू के शासक महाराजा रणजीत देव (शासन-काल १७२५—१७८० ई०) के समय में हुए और अन्तिम कवि श्री स्व० हरदत्त का जन्म ई० १८९० में तथा मृत्यु १९५६ ई० में हुई। इन्हीं श्री हरदत्त से वस्तुतः डोगरी की साहित्य-साधना का क्रम शुरू हुआ जो उत्तरोत्तर अविच्छिन्न रूप से बढ़ता गया है। 'नीहारिका' का आधा कलेवर उन्हीं की काव्य–प्रतिभा से आलोकित है। वे अध्यापक भी थे और कथावाचक भी। कथा-प्रवचन में वे प्रायः हिन्दी, पंजाबी तथा डोगरी में रचित अपने पदों को जब

गाकर सुनाते थे तो जनता मुग्ध हो जाती थी। वैसे हरदत्त जी की काव्य-रचना का समय डोगरी भाषा की प्रगति के अनुकूल नहीं था। जम्मू के सामाजिक, आर्थिक तथा प्रशासनिक सभी क्षेत्रों में ऐसे लोगों का प्रभुत्व था जिन्हें डोगरी भाषा और डोगरों के रहन-सहन के प्रति घृणा थी। डोगरों के दुर्भाग्य का प्रतीक यह तत्व हमारे ही घर में डोगरी का मज़ाक उड़ाता था। हरदत्त भी वातावरण की इस घुटन से परिचित थे। इसलिए उन्होंने डोगरी में एक पद लिखने के लिए चार पद हिन्दी और पंजाबी में लिखे। उनकी हिन्दी और पंजाबी रचनाएं केवल एक बंधे प्रयास का फल हैं। अतः निर्जीव सी लगती हैं। डोगरी कविता उनके हृदय की टीस और वेदना लेकर निकली थी, इसलिए वह आज भी हृदय को छूने की क्षमता रखती है। उनकी कविता का मूल स्वर है :—

"कियां गुजारा तेरा होग, ओ डोगरेआ देसा !"

(इस संघर्षमय जगत् में) ऐ मेरे डोगरे देश, तुम्हारा निर्वाह कैसे होगा ?

कवि हरदत्त अपनी साधना में अकेले थे। उन्हें दूसरा सहयोगी नहीं मिला। जब वह एक प्रकार से थक कर विश्राम चाहने लगे, उस समस दो तरुण साधक शनैः शनैः उभरे।

श्री भगवत्प्रसाद साठे ने डोगरी में लघु कथा लिखने का श्रीगणेश किया। उनकी एक डोगरी कहानी 'कुड़में दा ल्हामा' (समधियों का उलाहना) सुन कर उर्दू के विख्यात कथा-शिल्पी श्री राजेन्द्रसिंह बेदी ने कहा था 'यह कहानी अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के साहित्य में स्थान पाने योग्य है'। साठे की कहानियों का एक संग्रह 'पहला फुल्ल' नाम से छपा था। लेकिन सुनते हैं कि प्रेस का बिल न चुका सकने के कारण इस पुस्तक की कोई १००-५० प्रतिएं ही प्रकाश में आई। बाकी के फर्मे प्रेस वालों ने रद्दी के भाव बेच डाले। आज लोग उस पुस्तिका को देखने भर के लिए भी तरसते हैं। साठे अपने व्यक्तिगत हालात से विवश हो १९५० ई० के लगभग बम्बई चले गए थे। प्रसन्नता की बात है कि डोगरी संस्था के प्रयत्न के फल स्वरूप श्री साठे जुलाई १९६६ को, बम्बई छोड़ कर पुनः जम्मू लौट आए हैं। श्री हरदत्त भी अन्तिम दिनों में बम्बई चले गये थे। उन्हें भी व्यक्तिगत हालात ने यहां से खदेड़ दिया था। वहीं वे दिवंगत हुए।

श्री साठे के समकालीन दूसरे साधक थे दीनूभाई पन्त। इन्होंने डोगरी कविता को नए क्रान्तिकारी स्वर दिए :—

"उट्ठ मजूरा, जाग कसाना, तेरा बेला आया ओ !"

"ऐ मेहनतकशो उठो, ऐ किसानो जागो ! यह दौर तुम्हारा आ लगा है।" इनकी

हास्य-व्यंग्य पूर्ण कविताओं का पहला लघु संग्रह 'गुत्तलूं'' नाम से छपा। इसके अनन्तर 'मंगू दी छबील' तथा 'वीर गुलाब' नामक दो लघु काव्य-कथाएं छपीं। 'वीर गुलाब' में डोगरा जाति की गौरव भावना को काफी उजले रंगों में अंकित किया गया है। 'वीर गुलाब' डोगरी साहित्यिक नव चेतना की एक महत्वपूर्ण कृति है जिसका प्रकाशन १९४३ ई० में हुआ।

आज से २५-३० वर्ष पूर्व डोगरी की पूंजी यही दो चार कोमल परन्तु होनहार अंकुर थे। १९४३ से १९६६ तक के इन २२-२३ वर्षों में यह नव-चेतना अप्रत्याशित रूप से विकसित हुई है और विस्मय की बात यह है कि यह पुनीत संघर्ष ऐसे वातावरण में हुआ, जहां प्रतिकूलताएं अनेक थीं और अनुकूलता केवल तरुण साधकों के अदम्य साहस और लग्न की थी। रियासती शासन ने इन वर्षों में इस आन्दोलन को कभी प्रोत्साहन नहीं दिया। कोई आर्थिक सहायता नहीं दी। डुग्गर की जनता अपनी निर्धनता की दलदल में धंसी हुई, इस गौरवमय उत्थान की ओर विस्मय और श्रद्धा की नज़र से देख लेती थी। इसमें योग देने की न उसमें क्षमता थी, न ऐहसास। इस तरह निश्चित तथा उत्साह वर्धक, पाठक वर्ग के अभाव में भी, डोगरी का नया साहित्य लिखा गया और प्रकाशित हुआ।

आज डोगरी के इस साहित्यिक यज्ञ में योग देने के लिए जो नए तत्व क्षेत्र में आए हैं उनमें जम्मू रेडियो तथा जम्मू कश्मीर अकादमी उल्लेख योग्य हैं। रेडियो की स्थापना जम्मू में १९४८-४९ में हुई थी। डोगरी, जम्मू रेडियो की प्रादेशिक भाषा है जिसमें देहाती कार्यक्रम के अतिरिक्त साहित्यिक प्रोग्राम भी प्रसारित होते हैं। स्वभावतः कवि, कथाकार, एकांकी लेखक तथा निबन्ध-शिल्पी, चारों के लिए रेडियो ने, डोगरी में लिखने के अवसर प्रस्तुत किए। रेडियो द्वारा प्रसारित साहित्य प्रायः प्रकाशन के लिए सुलभ नहीं होता, फिर भी नए साहित्य सृजन में रेडियो का योग कम महत्व का नहीं। डोगरी-साहित्य सृष्टि में प्रोत्साहन देने वाला दूसरा तत्व जम्मू-कश्मीर अकादमी है, जिसकी स्थापना ई० १९५८ में हुई थी। रियासत की प्रादेशिक भाषाओं को बढ़ावा देना अकादमी का प्रमुख उद्देश्य है। रियासत में डोगरी को जम्मू प्रान्त की प्रमुख प्रादेशिक भाषा स्वीकार किया गया है इसलिए अकादमी कश्मीरी के साथ साथ डोगरी के विकास के लिए विशेषरूप से यत्न करती आई है। अकादमी ससय समय पर अपने प्रकाशन भी निकालती है जैसे 'साढ़ा साहित्य'' (हमारा साहित्य) (१९६०—६२) तथा ''साढ़ा साहित्य (१९६३ ई०)। डोगरी व्याकरण लिखने पर अकादमी ने, उसके लेखक श्री बंसीलाल गुप्त को समुचित पारिश्रमिक देकर इस रचना को प्रकाशित किया है। इसी तरह अकादमी ने पारिश्रमिक देकर प्रो० नीलांबर

देव से 'A Short History of Dogri Literature' (डोगरी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास) तथा पं० संसार चन्द और प्रो० लक्ष्मी नारायण से 'A Short History of art and Folk Literature' लिखवाई । डोगरी कहावत कोष के संग्रहकर्त्ता को भी अकादमी ने पारिश्रमिक देकर इस महत्वपूर्ण रचना को स्वयं प्रकाशित किया है। इसके अतिरिक्त अकादमी ने श्री रवीन्द्र ठाकुर शताब्दी समारोह के अवसर पर कवीन्द्र की गीतांजलि, एकोतर शती तथा इक्कीस कहानियां— इन तीन रचनाओं के डोगरी रूपान्तर प्रकाशित किये। १९५९ ई० में डोगरी के पांच काव्य-संग्रह हिन्दी अनुवाद सहित, प्रकाशित करके अकादमी ने डोगरी का प्रकाशन-कार्य प्रारम्भ किया था। गत तीन चार वर्षों से अकादमी प्रति वर्ष दूसरी भाषाओं के साथ डोगरी की रचनाओं के लिये प्रकाशन सहायता (Subsidy) देती आ रही है। प्रतिवर्ष नये डोगरी प्रकाशनों पर प्रथम तथा द्वितीय पुरस्कार भी दिये जाते हैं जो क्रमशः एक हजार तथा सात सौ रुपये के होते हैं।

इधर कुछ प्रकाशकों को भी इस साहित्यिक चेतना से व्यावसायिक लाभ उठाने की 'अन्त: प्रेरणा' हुई है। रियासती पुस्तकालयों में डोगरी प्रकाशनों की खपत की संभावनाओं का अनुमान लगाकर ये लोग अब डोगरी पुस्तकें प्रकाशित करने की दिशा में, थोड़ी झिझक के साथ बढ़ने लगे हैं।

डोगरी साहित्य-सृजन के लिये अनुकूल वातावरण बनाने तथा कवियों-लेखकों को संगठित करके उन्हें इस पुण्य कार्य में प्रवृत्त करने वाली डोगरी संस्था ने ही डोगरी प्रकाशनों का भी श्रीगणेश किया था। संस्था अब तक तीस के लगभग पुस्तकें प्रकाशित कर चुकी है। सस्था की ओर से एक त्रैमासिक पत्रिका 'नमीं चेतना' (नई चेतना) भी प्रकाशित हुई थी परन्तु अर्थाभाव के कारण केवल चार अंक निकाल कर ही उसे बन्द करना पड़ा। संस्था ने लाभ-भावना का सर्वथा परित्याग करके ये सभी प्रकाशन केवल लागत मात्र मूल्य पर सुलभ किये। बहुत सा साहित्य तो निःशुल्क ही बांटा गया। इस त्याग पूर्ण अध्यवसाय का ही परिणाम है कि जम्मू प्रांत में डोगरी भाषा और उसके साहित्य के सम्बन्ध में जनता में चर्चा, जिज्ञासा और गौरव भावना पैदा हुई है। डोगरी की साहित्यिक चेतना को प्रसार देने के लिये संस्था ने जम्मू में डोगरी रंगमंच की भी स्थापना की। १९४३ से पहले जम्मू के रंगमंच पर डोगरी भाषा का उपयोग केवल हास्य-मनोरंजन की सामग्री के रूप में होता था। १९४९ ई० में डोगरी का पहला नाटक 'बाबा जित्तो', जम्मू से लगभग ३० मील उत्तर में, टिक्करी नामक स्थान पर खेला गया। जनता में इसकी भव्य प्रतिक्रिया हुई। कार्यकर्त्ताओं का उत्साह बढ़ा। इस सांस्कृतिक आँदोलन के विकास को एक नई दिशा प्राप्त हुई। और उसके बाद 'नमां ग्रां' (नया गांव) तथा 'सरपंच' जैसे मौलिक नाटक तथा 'बलिदान'

(रवीन्द्र ठाकुर के बंगला नाटक का डोगरी रूपान्तर) जैसे अनुवाद अत्यन्त सफलता पूर्वक खेले गये। पहले दोनों नाटक कोई तीस चालीस बार प्रदर्शित हुये। श्री नरेन्द्र खजूरिया ने 'अस भाग जगाने आले आं' नाम से बाल-एकांकी लिखे, जिन्हें बड़ी सफलता से खेला गया है। संस्था द्वारा स्थान स्थान पर आयोजित किये जाने वाले डोगरी कवि-सम्मेलनों ने भी इस आंदोलन को प्रसार और लोकप्रियता प्रदान की। कवियों को भी इस जन-सम्पर्क से लाभ हुआ। उन्हें नई प्रेरणायें मिलीं, नया उत्साह मिला, नये विषय मिले। जनता को पहली बार इस तरह की सात्विक, मानसिक तथा बौद्धिक खुराक मिली और उनके जातीय अहं को पहली बार गौरव की गोद में खेलने का अवसर मिला। आज डोगरी कवियों की एक लम्बी सूची हमारे सामने है, जिनमें से अधिकतर को जनता का असीम प्यार मिला है। इनमें श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी (मृत्यु १९६२ ई०) स्व० ठाकुर रघुनाथ सिंह (१९६३ ई० में दिवंगत) श्री परमानन्द अलमस्त, श्री किशन स्मैलपुरी, श्री शम्भुनाथ, श्री दीनूभाई, श्री रामनाथ शास्त्री, श्री बरकत पहाड़ी, श्री मधुकर, श्री यश, श्री दीप, श्रीमती पद्मा, श्री तारा स्मैलपुरी, श्री मोहन लाल सपोलिया, श्री रामलाल शर्मा, श्री चरणसिंह, श्री रामकृष्ण शास्त्री, श्री रुमालसिंह भडवाल, श्री नरसिंहदेव, श्री रामलाल 'पपीहा' तथा श्री कृष्ण दत्त पादा के नाम मैं आसानी से याद कर सका हूं। जम्मू प्रांत के दूसरे कस्बों में भी कुछ साधक काम कर रहे हैं, परन्तु उनके विषय में मुझे अधिक जानकारी नहीं है।

डोगरी भाषा, साहित्य और संस्कृति का यह संक्षिप्त विवरण पाठक को एक उपेक्षित परन्तु विकास की क्षमता रखने वाली भाषा के जीवन-संग्राम की एक झलक प्रस्तुत कर सके तो मेरा प्रयास सफल होगा। अब आइये, संक्षेप में डोगरी की अन्य प्रकाशित रचनाओं की चर्चा करके इस विवेचन को समाप्त करें।

डोगरी कविता के क्षेत्र में निम्न रचनायें उल्लेखनीय हैं :—

(१) डोगरी भजनमाला (दो भाग), (२) गुतलूं (३) मंगु दी छवील (४) वीर गुलाब (५) दादी ते मां (६) नमियाँ मिंजरां (७) डोला कुन ठ्प्पेया ? (८) भड़ास (९) रामायण (सम्पूर्ण) (१०) गुंगे दा गुढ़ (११) मानसरोवर (१२) गुप्त गंगा (१३) अमृत वर्षा (१४) श्री ब्रह्म संकीर्तन (१५) डोगरी भजन माला (१६) फौजी पिंशनर (१७) किरण (१८) जोत (१९) भुणाक (२०) भगवद-गीता (२१) नीतिशतक

★ लेखक (१) श्री हरदत्त, (२, ३, ४ और ५) श्री दीनूभाई पंत, (६, ७) श्री मधुकर, (८, ९) श्री शम्भुनाथ, (१०, ११, १२, १३, १४, १५) श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी, (१६) श्री तारा स्मैलपुरी (१७) श्री रामलाल शर्मा (१८) श्री चरणसिंह (१९) श्री परमानन्द अलमस्त (२०) अनुवादक—श्री रघुनाथसिंह

(२२) वैराग्य शतक (२३) जागो डुग्गर (२४) नीहारिका (२५) प्रातकिरण (२६) मधुकण (२७) अरुणिमा (२८) मगधूलि (२९) गीतांजलि (३०) एकोत्तर शती (३१) खारे मिट्ठे अत्थरूं । (३२) नमें रस्ते नमीं कविता । ये बत्तीस शीर्षक मेरी दृष्टि में नाच उठे हैं।

पहले दशक (१९४३—५३ ई०) में डोगरी कविता का ही प्राधान्य रहा । इसके बाद गद्य की प्रवृत्ति भी क्रमशः बढ़ती गई । 'पहला फुल्ल' नामक लघु कथा संग्रह का उल्लेख पहले दशक के प्रारम्भिक विवेचन में किया गया है, इसके बाद कथा साहित्य में निम्न प्रकाशन मुझे ज्ञात हैं—

(१) सुई धागा (लेखिका: ललिता महता)
(२) काले हत्थ (काले हाथ—ले० वेदराही)
(३) पैरें दे नशान (पांव के निशान) (श्री रामकुमार अबरोल)
(४) फुल्ल बनी गे ङारे (फूल बन गये अंगारे) (श्री रामकुमार अबरोल)
(५) खीरला मानु (अंतिम मानव) (प्रो० मदनमोहन एम० ए०)
(६) चाननी (चान्दनी) (,,)
(७) तारें दी लो (,,)
(८) कोलें दियां लीकरां (श्री नरेन्द्र खजूरिया)
(९) रोचक कहानियां (,, ,, ,,)
(१०) नीला अम्बर काले बदल (,, ,, ,,)
(११) उच्चियां धारां (ऊंचे पर्वत) श्री धर्मचन्द 'प्रशान्त'
(१२) श्रेष्ठ डोगरी कहानिनां (अकादमी द्वारा प्रकाशित)
(१३) धुखदे गोटे (श्री नरसिंहदेव जमवाल)

दूसरे दशक की महत्वपूर्ण उपलब्धि में तीन उपन्यासों का स्थान सर्वोपरि है, क्योंकि इन प्रकाशनों ने डोगरी की साहित्यिक सामर्थ्य को पुष्ट किया है। ये उपन्यास हैं—

१. श्री नरेन्द्र खजूरिया द्वारा लिखित 'शानो'
२. प्रो० मदनमोहन द्वारा रचित —'धारां ते धूड़ां'

(२१, २२) अनुवादक रामनाथ शास्त्री (२३) पहला काव्य-संग्रह-संपा० रामनाथ शास्त्री (२४—२८) पांच काव्य-संग्रह हिन्दी अनुवाद तथा लेखक परिचय सहित अकादमी द्वारा प्रकाशित । (२९) अनु० रामनाथ शास्त्री (३०) अनु० के० सिंह मधुकर (३१) विवाह गीत सम्पा० सुशीला सलाथिया । (३२) श्री नरसिंह देव जमवाल ।

३. श्री वेद राही की रचना—'हाड़ बेड़ी पत्तन'

तीनों उपन्यास डुग्गर के लोक जीवन के विभिन्न पहलुओं पर बड़ा मार्मिक प्रकाश डालते हैं। तीनों में एक प्रौढ़ता है। भाषा, वातावरण, चरित्र-चित्रण तथा वस्तुसंघर्ष सभी तत्वों में एक परिपक्वता है। इस आंदोलन को आगे बढ़ाने के उत्तरदायित्व की सूचक है यह प्रौढ़ता। प्रकाशित नाटकों में 'नमां ग्रां', 'सरपंच' तथा 'बलिदान' का उल्लेख पीछे हुआ। इनके अतिरिक्त उल्लेख योग्य हैं--(१) श्री प्रशांत का पौराणिक नाटक 'देवका-जन्म' (२) श्री वेदराही का 'धारें दे अत्थरूँ' और (३) श्री नरेन्द्र खजूरिया का बाल-एकांकी संग्रह-'अस भाग जगाने आले आं'। गद्य साहित्य में श्रीमती शक्ति शर्मा और श्री श्यामलाल शर्मा द्वारा लिखित तथा प्रकाशित पुस्तक –'त्रिवेणी' जिसमें भाषा, साहित्य तथा संस्कृति इन तीन शीर्षकों के अन्तर्गत आने वाले साहित्यिक निबन्ध संगृहीत हैं, विशेष उल्लेख योग्य है।

गद्य साहित्य की पुष्टि करने वाले कुछ और अनुवाद भी प्रकाशित हुये हैं। इनमें (१) श्री गौरीशंकर (रिटायर्ड प्रिंसिपल) द्वारा किया गया गीता-अनुवाद (२) उनके पिता स्वर्गीय श्री कृपाराम शास्त्री द्वारा किया गया 'दुर्गा सप्तशती' का अनुवाद (३) श्री अनन्तराम शास्त्री द्वारा किया गया 'पंच तंत्र' का संक्षिप्त अनुवाद (४, ५) श्री श्यामलाल शर्मा द्वारा अनूदित—'भागवत दियाँ कत्थाँ' और 'बैताल पचीसी' तथा (६) विनोवा जी के गीता-प्रवचन का अनुवाद उल्लेखनीय हैं।

जम्मू कश्मीर अकादमी के दो वार्षिक प्रकाशन 'साढ़ा साहित्य' तथा 'शीराज़ा' दोनों में वर्ष की प्रतिनिधि रचनाओं का चयन रहता है।

अन्त में मैं 'रेखा' पत्रिका का उल्लेख करके इस लेख का उपसंहार करता हूं। यह पत्रिका श्री धर्मचन्द 'प्रशान्त' द्वारा दो वर्ष तक त्रैमासिक रूप में निकाली जाती रही है। 'रेखा' 'नमीं चेतना' के अभाव को तो पूरा नहीं कर सकी लेकिन फिर भी इस आन्दोलन की एक बड़ी जरूरत को किसी हद तक पूरा करती रही। अर्थाभाव का दैत्य उसे भी निगल चुका है।

मैंने इस लेख के माध्यम से जम्मू में होने वाले साहित्यिक नव जागरण का एक संक्षिप्त सा विवरण प्रस्तुत किया है। आशा है इससे भारतीय भाषाओं के ज्ञाता अपनी भावी रचनाओं में डोगरी के विषय में पुरानी भ्रांत धारणाओं का परित्याग करके इसका यथा स्थान समुचित उल्लेख करेंगे।

बूढा ऋषि

सुभाष भारद्वाज

एक भूल करता हूं
लाख पश्चात्ताप
मेरा निज देता है
मुझे कितने शाप
पर मैं फिर भी
स्वस्थ स्थिर रहता हूं
पल भर टूट कर
फिर बन जाता हूं
उसी तरह हंसता हूं
दूसरों को हंसाता हूं

क्यों कि
मेरा ऋषि मन
मेरी भूलों को सुधारने
मेरे पाप-पुंज को पखारने में
अशक्त, असमर्थ
अब बहुत बूढ़ा और निस्तेज हो गया है
और अब धीरे-धीरे
मुझ भुलक्कड़ का
भक्त बनता जा रहा है

और जब मैं
अपनी भूलों के पहाड़ के शिखर पर
चढ़ कर देखता हूं
तो दूर नीचे खड़ा
वह बूढा ऋषि
मुझ से
मुझ तक पहुंचने का
मार्ग पूछ रहा है

●

भारतीय लोककथाओं की परम्परा और कश्मीर

ललिता कौल

भारतीय लोककथाओं की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। कई विद्वान लोककथा की जन्मभूमि भारत को ही मानते हैं। यद्यपि इस विषय में विद्वानों में मतभेद है तथापि इससे भारतीय लोककथाओं की प्राचीन परम्परा में कोई कमी नहीं होती। यदि आज पाश्चात्य विद्वान लोककथाओं का मूल उद्गम स्थान भारत न भी मानें तथापि यह मानना ही होगा कि भारत में लोक कहानियों की साहित्यिक अभिव्यक्ति की परम्परा प्राचीनतम है, जिस में कश्मीर का यथेष्ट योगदान है। और जो पश्चिमी लोकसाहित्य मर्मज्ञ यह स्वीकार करने में झिझकते हैं, वे मात्र 'बाइबल' के सहारे अपने दावे सफल नहीं बना सकते हैं।

लोककथा-साहित्य की दृष्टि से शुद्ध लोककथाओं का प्राचीनतम एवं वृहत् संग्रह गुणाढ्य द्वारा पैशाची भाषा में लिखित 'वृहत्कथा' है। यह ग्रन्थ सात भागों में लिखा गया था, परन्तु इसकी मूल कृति आज उपलब्ध नहीं। डॉ० बूलर के मतानुसार इस ग्रन्थ की रचना दूसरी शताब्दी में हुई है। इस ग्रन्थ के तीन अनुदित रूप संस्कृत में भी उपलब्ध होते हैं—१. 'वृहत्कथा श्लोक संग्रह', २. 'वृहत्कथा मंजरी' तथा ३. 'कथा सरित्सागर'। इन में भी अन्तिम (कथासरित्सागर) ही सर्वाधिक लोकप्रिय तथा बहु-प्रचलित ग्रन्थ है।

वृहत्कथा श्लोक संग्रह

इस ग्रन्थ की रचना नेपाल के निवासी बुधस्वामी द्वारा आठवीं या नवीं शताब्दी में की हुई मानी जाती है, परन्तु यह कृति भी आजकल सम्पूर्ण रूप में उपलब्ध नहीं, केवल कुछ खण्ड ही प्रकाश में आये हैं। डॉ० बलदेव उपाध्याय के अनुसार इस ग्रन्थ का जितना भी भाग प्राप्त हो सका है, उसमें २८ सर्ग और ४,५३९ श्लोक पाये जाते हैं।

वृहत्कथा मंजरी

कतिपय विद्वान कश्मीर के राजा अनन्त के आश्रित कवि आचार्य क्षेमेन्द्र को इसका रचयिता मानते हैं। राजतरंगिनी में राजा अनन्त का समय १०२८-१०६३ तक का बताया गया है[1]। जबकि कई विद्वानों को कल्हण के इस ऐतिहासिक विवरण पर संदेह है। डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय ने इसके समस्त श्लोकों को ७५०० गिना है[2]। इस ग्रन्थ में कश्मीरी लोकसंस्कृति के महत्वपूर्ण तत्व अन्तर्निहित हैं।

कथासरित्सागर

कश्मीर के राजा अनन्त और महाकवि क्षेमेन्द्र के समकालीन सोमदेव द्वारा रचित 'कथासरित्सागर' वास्तव में भारतीय कथारूपी सरिताओं का सागर है। वृहत्कथा का यह सबसे प्रसिद्ध एवं वृहत अनुदित रूप है। इसमें २४००० श्लोक, अठारह लम्बक अथवा १२४ अध्याय हैं। वृहत्कथा के आधार पर रचित इस ग्रन्थ के प्रथम लम्बक में रचयिता ने पूर्वपीठिका के रूप में, आधार ग्रन्थ के लेखक, गुणाढ्य के जीवन चरित तथा ग्रन्थ के लिखे जाने का विस्तृत विवरण दिया है। इस महान कथाकार ने इस ग्रन्थ को रचने की प्रेरणा 'शिव' एवं 'शक्ति' से प्राप्त की जिससे स्पष्ट होता है कि लेखक शैवमतानुयायी थे, अत: कश्मीर की शैवमत शाखा से अधिक प्रभावित थे। 'शिव' ने एकान्त में पार्वती को सात विद्याधरों से सम्बन्धित कहानियां सुनाई, परन्तु शिव के एक गण 'पुष्पदन्त' ने योगाभ्यास द्वारा भ्रमर का रूप धारण कर कक्ष में प्रवेश किया तथा वे कहानियां सुन लीं और अपनी स्त्री जया को जाकर सुना दीं। पार्वती ने जब जया से इन कथाओं को पुन: सुन लिया तो पुष्पदन्त के छल का रहस्य खुल गया। पार्वती ने क्रुद्ध होकर पुष्पदन्त को मनुष्य योनि में जन्म लेने का शाप दिया तथा उसके पक्ष में बोलने वाले 'माल्यवान', को भी शाप मिला। जया के अत्यन्त विलाप के पश्चात पार्वती ने शापान्त का उपाय इस प्रकार बताया कि जब पुष्पदन्त शापवश राक्षस बने हुये यक्ष से मिलकर अपनी पूर्वास्थिति का स्मरण कर. शिव द्वारा सुनी हुई कहानियां उसे सुनाये

---

1. Kalhan's-Rajtarangini-Translated by, Stein Vol. I Page 288

2. भोजपुरी लोकसाहित्य का अध्ययन, पृ० ४०९।

तो वह अपने दिव्यस्वरूप को प्राप्त होगा । इन्हीं कहानियों को उस पिशाच से सुनकर तथा इनका प्रचार कर 'माल्यवान' तथा पिशाच दोनों मुक्त हो जायेंगे ।

भूलोक में आकर पुष्पदन्त 'वररुचि' बना तथा माल्यवान 'गुणाढ्य' । पिशाच द्वारा सुनी गई उन कहानियों का संग्रह पैशाची भाषा में सात भागों में लिपिवद्ध कर गुणाढ्य ने तत्कालीन राजा सातवाहन को वे कहानियां भेंट स्वरूप प्रस्तुत कीं । परन्तु क्रूर राजा द्वारा उन्हें अस्वीकृत करने पर वह अत्यन्त निराश हुआ और जाकर वन में अपने शिष्यों को वह कहानियां सुना कर एक एक पृष्ठ अग्नि में होम करता गया । इस प्रकार इस ग्रन्थ के छः भाग भस्म हुये और अन्तिम राजा तथा शिष्यों के अनुरोध पर बच गया ।

यद्यपि आजकल हमें गुणाढ्य द्वारा रचित 'वृहत्कथा' उपलब्ध नहीं, पर उसके आधार पर लिखे गये 'कथासरित्सागर' को यदि हम कथाओं का सागर मानते हैं तो वृहत्कथा को इस क्षेत्र का महासागर मानने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये ।

'वृहत्कथा' के अतिरिक्त सोमदेव ने अनेक पौराणिक तथा जातक कथाओं को चुन कर अपने ग्रन्थ का सृजन किया है । कथासरित्सागर में अधिकांश कहानियां पंचतन्त्र से उद्धृत प्रतीत होती हैं ।

'कथासरित्सागर' का हिन्दी रूपान्तर बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् ने तीन भागों में प्रकाशित किया है । इसमें से ग्यारह खण्डों का अनुवाद स्व० पं० केदारनाथ शर्मा 'सारस्वत' ने किया है । इस ग्रन्थ का अंग्रेज़ी अनुवाद करने का उत्तरदायित्व 'पेन्ज़र' ने पूर्ण किया तथा उसे 'ओशन आफ स्टोरी' के नाम से कई भागों में प्रकाशित भी कराया ।

यह भारत की अतिप्राचीन एवं बहुप्रचलित लोककथाओं का वृहत् संग्रह है ।

पंचतन्त्र—

विश्वकथा साहित्य में पंचतन्त्र का स्थान अद्वितीय है । इन कहानियों ने योरुपीय कथा साहित्य को भी प्रभावित किया है । योरुप तथा मध्य ऐशिया के महान् ग्रन्थ 'इसप्स फेबुल्ज़' तथा 'अरेबियन नाइट्स' पर भी पंचतन्त्र का प्रभाव स्पष्ट झलकता है, जिसे विद्वानगण स्वीकार भी कर चुके हैं । पंचतन्त्र का सबसे पहला अनुवाद पहलवी भाषा में 'नवशेरवाँ' ने लगभग ५६० ई० में कराया[1] । इसके पश्चात सीरियन अरवी तथा योरुप के अन्य प्रमुख भाषाओं में भी इसका अनुवाद हुआ । जर्मनी साहित्य पर पंचतन्त्र का विशेष प्रभाव रहा है ।[2]

---

१. देखिये डॉ० शंकरलाल यादव 'हरियाना परदेश का लोकसाहित्य' पृ० ३४२
२. History of Sanskrit literature WEBER, Page 211

इस ग्रन्थ की रचना विष्णुशर्मा ने राजपुत्रों के नीतिशास्त्र प्रशिक्षण हेतु की थी। इसके रचना काल के विषय में निश्चित रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता। ऐ० एस० पी० आय्यर इसका रचना काल २७५ ईसा पूर्व से लेकर १०० ई० तक मानते हैं।[1] क्योंकि इसका प्राचीनतम अनुवाद 'तन्त्राख्यायिका' माना जाता है जिसका रचना काल १०० ई० है[2]। बाद में इस मौलिक ग्रन्थ का प्रक्षेपण एवं परिवर्धन किया हुआ भी ज्ञात पड़ता है, जैसे 'गंगादत्त,' 'पृथ्वीदत्त' तथा 'प्रियदर्शन' की कथा।[3] यह कथा पृथ्वीराज, जैयचन्द तथा मुहम्मद गौरी की कथा का एक रूपक है। स्पष्ट है कि यह पृथ्वीराज चौहान के राज्यकाल तथा उसके बाद की कथा है जिसे प्रक्षेपण द्वारा पंचतन्त्र में सम्मिलित किया गया है।

पंचतन्त्र में पांच तन्त्र अथवा भाग हैं जिनमें अनेक छोटी-बड़ी नीतिपरक कथाएं मुख्यत: पशु-पक्षियों को पात्र बना कर प्रतीकात्मक पद्धति पर रची गई हैं। इस ग्रन्थ के रचनाकाल के अतिरिक्त रचना स्थान के विषय में भी मतविरोध है। 'कहने का आशय यह नहीं कि पंचतन्त्र के रचयिता विष्णु शर्मा नहीं थे अपितु आर्थर राइडर के मतानुसार ये कहानियां कश्मीर की ही उपज हैं।[4]

जातक—

लोककथाओं की परम्परा का मूल्यांकन करते समय बौद्ध साहित्य की जातक कथाओं की उपेक्षा नहीं की जा सकती। महात्मा बुद्ध के पूर्व जन्म से सम्बन्धित ये कहानियां उपदेशात्मक एवं नीतिप्रधान हैं। भगवान बुद्ध ने स्वयं ही ये कहानियां विविध अवसरों पर उठीं जिज्ञासाओं एवं शंकाओं के उपशमन के हेतु पाली भाषा में कही हैं। इन कहानियों की सब से बड़ी विशेषता इन का सरल स्वाभाविक एवं मानवीय तथ्यों से पूर्ण होना है।

जातक संख्या में ५५० हैं। इनके अध्ययनोपरान्त यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि इसमें अधिकांश कहानियां भगवान् बुद्ध के समकालीन जनसाधारण में बहुप्रचलित थीं। इसी कारण कई विद्वान 'दशरथ-जातक' (जो रामायण से पूर्व की कथा है) के आधार पर पंचतन्त्र में रामायण से भी प्राचीन कहानियों का समावेश मानते हैं। परियों की कहानियां अथवा रोचक चुटकले भी धार्मिक सांचे में ढल कर इस ग्रन्थ में अवदानों में परिवर्तित हो गये हैं, जिसका मूल कारण धर्म प्रचार था। भिक्षुकों एवं अन्य धर्म

---

1. A. S. P. Ayyar Panchtantra and Hitopdesa Stories : Introduction, page 10 (Madras : IIed. 1960)
2. वही
3. वही कथा, नं० ४४।
4. मोहनकृष्ण दर 'कश्मीर का लोकसाहित्य' पृष्ठ २२।

प्रचारकों ने लोक कहानियों को माध्यम के रूप में चुना। ठीक उसी प्रकार जिस तरह सूफियों ने इस्लाम के प्रचार के लिये भारतीय लोक कथाओं का आश्रय लिया या ईसाइयों ने मध्ययुगीन योरुप में, लोकप्रिय कहानियों द्वारा ईसा धर्म को फैलाया। इस दृष्टि से बौद्धधर्म की पुर्नजन्मवादिता को साहित्यिक एवं लोक कहानियों को अवदान बनाने की सुविधा प्राप्त थी[1]। अतः काल्पनिक परियों या हास्य-व्यंग्य प्रधान कहानियां तथा चुटकले धर्म के रंग में रंग कर अमर हो गये।

उपर्युक्त आधार भूत सामग्री के अतिरिक्त भारतीय लोककथाओं की टूटी हुई शृंखला को जोड़ने वाले कतिपय अन्य ग्रन्थ भी हैं, जिन में 'हितोपदेश' 'वैतालपंचमी-शतिका', 'सिम्हासन-द्वात्रत्रिशिका' तथा 'शुकसप्तति' प्रमुख हैं। इन ग्रन्थों का निर्माण भले ही कश्मीर में न हुआ हो परन्तु इन में लिपिबद्ध सामग्री अंशतः 'वृहत्कथा', कथासरित्सागर' इत्यादि महत्वपूर्ण कृतियों का ही रूपान्तर है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि यद्यपि भारतीय लोकसाहित्य भण्डार को सभी भाषाओं ने समय समय पर समृद्ध बनाने के प्रयत्न किये हैं, परन्तु मूलतः 'लोककथा' का आविभाव सर्वप्रथम कश्मीर में ही हुआ जान पड़ता है, अतः इसे एक साहित्यिक स्वरूप देने में कश्मीर ही अग्रणी रहा है। 'गुणाढ्य' की वृहत्कथा को आज भी यहां 'प्रहस्कथा' के नाम से अभिहीत किया जाता है। और इसका एक खण्ड शारदा लिपि में अभी भी श्रीनगर में सुरक्षित है।

आवश्यकता इस बात की है कि शोध एवं परिश्रम से अप्रकाशित सामग्री का अध्ययन तथा प्रकाशित ग्रन्थों का पुनर्मूल्यांकन हो जिससे भारतीय लोककथाओं की टूटी हुई शृंखला को जोड़ने में सहायता प्राप्त हो।

● ● ●

---

1. Encyclopedia of Religion & Ethics "Legand" Volume VII page 491.
(Edited by MARIA LEACH)—F. & W. Pb. (America)

वसन्त

प्रयाग शुक्ल

कितना कुछ छूट जाता है बिना जाने,
अचानक वसंत सामने कर देता है एक दर्पण,
और हवा में कांप जाता है मन !
रंगों और स्वरों को बांधते हुए अक्षर
लिखे नहीं जाते,
और एक गन्ध, पूरे अस्तित्व को
अधूरा कर जाती है—
फैल जाता है आकाश, और दु:खों की छायाएं
पकड़ में नहीं आतीं—
निरन्तर कुछ भूलने को मन करता है,
बराबर कुछ याद करने के लिए
सब कुछ परखता है—
चीजों में उजली धूप उलझ जाती है
और एक लम्बे समय तक न जीने का
आभास होता है,
और फिर जीने के लिए चीजें ढूँढ़े
नहीं मिलतीं, जिन्हें स्वीकार कर ले वसंत !
लेकिन बच रहती है फिर भी एक इच्छा
रच जाने की,
और डराती नहीं है बिखरी हुई ज़िन्दगी,
न ही अंत !

●

युगकवि अब्दुल अहद आज़ाद

प्रो० चमनलाल सपरू

१९४७ से पूर्व कश्मीरी जनमानस को अपनी कविताओं द्वारा उद्वेलित करके स्वतन्त्रता संग्राम के लिए आह्वान देने वाले कवियों में अब्दुल अहद आजाद का नाम अग्रगण्य है। आज़ाद वास्तव में राष्ट्रीय कवि थे, उन्होंने अपनी कविताओं में मात्र कश्मीरी समाज को ही नहीं अपितु समस्त देशवासियों को संदेश दिया है। एक महान कवि के अनुरूप उन्होंने देशवासियों के माध्यम से विश्व को मानवता का संदेश दिया। 'आज़ाद' की कविता में संकुचितता का अभाव ही उन्हें भारत के महाकवियों की परम्परा में ले आता है।

जन्म

अब्दुल अहद आज़ाद का जन्म श्रीनगर से १३ मील दूर तहसील बड़गाम के रांगर नामक गांव में संवत् १९६० वि० (१९०३ ई०) में हुआ था। आपके पिता का नाम सुलतान डार था। वे भी अरबी, फारसी तथा मुस्लिम धार्मिक साहित्य के ज्ञाता थे। सुलतान डार सूफ़ी मिज़ाज के व्यक्ति थे। उनकी इच्छा थी कि 'आज़ाद' भी इसी परम्परा को अपनाये। किन्तु यह कैसे संभव था? अब्दुल अहद को तो एक युगान्तरकारी कार्य करना था।

अब्दुल अहद की प्रारम्भिक शिक्षा अपने ही भाई के द्वारा स्थापित मकतब में हुई। उन्होंने आरम्भ में उर्दू और फारसी की पढ़ाई की। अपने पिता से कुरान

शरीफ तथा अन्य धार्मिक साहित्य का अध्ययन किया। १९८५ वि० (१९१८ ई०) में लगभग सोलह वर्ष की आयु में इनको पास के ही गांव जुवहामा में अरबी-अध्यापक के रूप में १३ रुपये मासिक वेतन पर भेजा गया। इसके पश्चात् अध्यापन के साथ साथ कवि ने अपना अध्ययन भी जारी रखा। आप को अनुसंधान के प्रति भी काफी रुचि थी। कविता तो उन्होंने १५ वर्ष की अवस्था से ही करना आरम्भ किया था।

सन् १९३१ की राजनैतिक घटनाओं ने आप को भी प्रभावित किया। सरकारी कर्मचारी होने के कारण वे सक्रिय रूप से आन्दोलनों में भाग तो नहीं ले सके किन्तु परोक्ष रूप से उस समय के वातावरण में रुचि लेने के कारण सरकार ने उन्हें अपने गांव से दूर 'त्राल' नामक स्थान पर स्थानांतरित कर दिया। इन्हीं दिनों इनके चार वर्षीय इकलौते बेटे की मृत्यु हो गई। इस घटना के बाद कवि ने अपना उपनाम 'आज़ाद' रख लिया। इससे पहले बचपन में वे 'अहद' और बाद में 'जाँबाज' नाम से कविता करते थे।

'महजूर' से भेंट

इनके जीवन की एक और प्रसिद्ध घटना है, इनकी महजूर से भेंट। १९३४ ई० में इनको प्रशिक्षण के लिए श्रीनगर आना पड़ा। यहां उनकी भेंट प्रसिद्ध कश्मीरी कवि महजूर से हुई। उनकी कविता के ये बड़े रसिया तो थे ही। उनसे मिल कर वे उनके व्यक्तित्व से भी बड़े प्रभावित हुए। कुछ देर उनसे इसलाह भी लेते रहे और उनका शागिर्द कहलाने में गर्व का अनुभव करते रहे।

महजूर के जीवन और कृतित्व पर लेख लिखने के विचार से अब्दुल अहद आज़ाद ने कश्मीरी-काव्य का विशद अध्ययन किया और इस प्रकार कश्मीरी भाषा और कविता पर एक बड़ी पुस्तक लिखी[1]। यह एक प्रकार से कश्मीरी साहित्य का इतिहास लिखने की दिशा में प्रथम सुव्यस्थित प्रयत्न है।

आज़ाद ने उर्दू के प्रख्यात कवि इकबाल के काव्य का भी गहन अध्ययन किया था। इसका भी उनके विचारों पर अच्छा खासा प्रभाव पड़ा।

आज़ाद का स्वास्थ्य प्रायः ठीक नहीं रहता था। देश को स्वतन्त्र देखने का इच्छुक आज़ाद स्वतन्त्रता प्राप्ति के आठ महीने बाद १९४८ ई० में अन्तड़ियों के रोग से ४५ वर्ष की अल्पायु में ही चल बसा। इनकी कब्र इनके जन्म स्थान रांगर में है।

आज़ाद की रचनायें

अपने अल्प जीवन में कवि ने अधिकांश समय साहित्य-साधना में ही लगाया। प्रारम्भ में इन्होंने प्रायः गज़लें लिखीं। बाद में गजलों के साथ साथ नज़्में भी लिखते

---

१. इस पुस्तक को रियासत की कल्चरल अकादमी ने प्रकाशित किया है।

रहे। जीवन के अन्तिम दिनों में इनके काव्य में राजनैतिक, सामाजिक और नैतिक स्वर अधिक मुखर हो उठे थे ।

इसके अतिरिक्त इन्होंने कश्मीर के एक प्रमुख कवि 'मकबूल शाह क्रालवारी' के अप्रकाशित काव्य को अपनी विद्वता पूर्ण भूमिका के साथ सम्पादित करके प्रकाशित किया।

आज़ाद और उनकी कविता

आज़ाद ने लेखनी उस समय उठाई थी जब कि सारे देश में स्वतन्त्रता के लिए आवाज़ उठ रही थी। कवि त्रिकालदृष्टा होने के कारण समाज का नेतृत्व करने में राजनैतिक नेताओं से पीछे नहीं रहा। उनके सामने एक स्पष्ट दृष्टिकोण था। वह संकीर्णता में फंसे हुए समाज, आर्थिक शोषण से दबे हुए मानव और गुलामी के बन्धनों में जकड़े हुए देश को इन सभी प्रकार के बन्धनों से मुक्त देखना चाहते थे। इन्हीं उच्च आदेशों की प्राप्ति के लिये कवि को कठिनाइयों से जूझना पड़ा।

मानवतावादी

आज़ाद मूलत: मानवतावादी थे। उनके अनुसार मनुष्य में संकीर्णता के भाव ही उन्हें एक दूसरे से दूर करते हैं। वह मनुष्य को सचेत करते हैं कि तुम स्वयं ही मानवता को बदनाम करने के कारण बन गये हो। तू ज्ञान का प्रकाश-स्तम्भ था लेकिन तू दूसरों को जलाने वाली आग बन गया। हे बेरहम इन्सान, तुमने मानवता को बदनाम कर दिया।

मनुष्य एक ही तो है और संसार भी एक ही है। इन सब में नख और मांस जैसा घनिष्ठ सम्बन्ध है। तो भला तू ही बता-तुम्हारे भीतर द्वैत की यह आग किसने भड़का दी ?

चश्रोसुख गाटॅजारुक नूर लोगुथ नार इनसानो।
करॅथ इन्सॉनियथ बदनाम हा बे श्रार इनसानो॥
कुनुइ श्रादम कुनुइ श्रालम नमस सॅत्य मात्र्यत्र माजस नम्।
यि कम्य त्रोवुय दिलस श्रन्दर दुई हुन्द नार इन्सानो॥

'आज़ाद' इस सिद्धांत में विश्वास रखते हैं कि भिन्न-भिन्न धर्म वास्तव में एक लक्ष्य तक पहुँचाने वाले हैं। अत: द्वैत और वैमन्यस्य किस लिए ?

"यदि पूजा और नमाज़ का अर्थ दुई है तो मैं ऐसी भेंट ईश्वर को सादर लौटा दूंगा।"

दोगन्यार छु येलि मतलब पूजायि निमाज़न हुंद ।
सोज़स बयि बख्शॉयिश बोंय तूय लॅदिथ डाले ॥

परमात्मा सब का एक है । उसमें द्वैत नहीं और यह संसार में उत्पन्न दुई हमारी अपनी उपज है । "यदि प्रकृति की यह इच्छा होती कि हर राष्ट्र और प्रत्येक संप्रदाय भिन्न-भिन्न हो तो प्रत्येक राष्ट्र और सम्प्रदाय के लिए भिन्न भिन्न पृथ्वी और आकाश बनाया होता ।"

को'दरतस ब्यो'न ब्यो'न थव'न्य येलि आसॅह्न मिलत तॅ दीन ।
प्रथ अकिस ब्यो'न ब्यो'न जमीनाह आसमानाह आ.हिहे ॥

अपनी एक और कविता में आज़ाद कहता है कि "मेरे नदीकज़ जैसा एक हिन्दू है वैसा ही मुसलमान है । भाई चारा मेरा दीन है और समानता मेरा धर्म है । मेरा नूर (अस्तित्व) सबों के लिए है । मेरे लिए जैसा 'काबा' है वैसा ही 'बुतखाना' है ।

पुथ स्य निश ह्योंद तय त्युथ मुसलमाना
गोश थाव बोज़ अफसाना म्योन ।
दीन म्योन मिल'चार धर्म यकसाना
सारिनई क्युत छु नूराना म्योन ।
युथ स्य निश काबा त्युथ छु बुतखाना
गोश थाव........................ ।

मानवतावाद का सन्देश देने के अतिरिक्त आज़ाद प्रकृति-चित्रण करने में भी बड़े निपुण हैं । कवि का अधिकांश जीवन शहर के कोलाहल से दूर प्रकृति का अध्ययन करते हुए बीता है । आपने यत्र-तत्र अपनी कविताओं में प्राकृतिक वर्णन किया है । इसमें आपकी शैली की तुलना कविवर 'प्रसाद' और 'पंत' से की जा सकती है । आपने कई ऐसी कविताएं लिखी हैं जिनका विषय मूलत: प्रकृति ही है । उदाहरणार्थ—'पांचादर' (जलप्रपात) व्यथ (वितस्ता) आरवल (एक पुष्प) शीन मान्य (हिमखंड) वनॅच यॉर (देवदार) दरियाव (दरिया) इत्यादि ।

इनमें से पांचादर (जलप्रपात) इनकी उत्कृष्ट एवं प्रसिद्ध रचना है । इस कविता की भाषा सम्बन्धी विशेषता कवि का विशुद्ध कश्मीरी प्रयोग है । 'जलप्रपात' की सुन्दरता पर मुग्ध होकर वे अनुपम मानवीकरण करने में भी सफल हुए हैं । 'निर्झर' की एक सुकुमारी के साथ तुलना की गई है और उसके अनुपम सौन्दर्य को नजर न लगने की प्रार्थना भी की है । कहते हैं :

चक चाव छुह शुर्य पानस
चश्म बद दूर अथ नूरानस
शिलि पद्मान लाल माल परिये । रोजि०
दूरि डयूठुम चोन पर तवा
नूर चादर जन बर हवा
मो'ख्त जालरन चूनि जर्य जरिये ।। रोजि०

जलप्रपात में जहां प्रकृति-चित्रण सूक्ष्म ढंग से हुआ है, वहां उसमें जीवन की समस्याओं का सम्बन्ध जोड़ कर कवि ने अपने विषय को व्यापक रूप से प्रतिपादित किया है। कवि जलप्रपात से पूछ रहा है कि तुम कहां से दौड़े-दौड़े आ रहे हो? मुझे लगता है कि वहां 'पारिवारिक-वितरण' तथा प्रभुता का मद आदि नहीं होगा? वहां संभवत: 'जनेऊ' तथा 'मालायें' नहीं होंगी और न ही गदागिरि (भिक्षुक वृत्ति) होगी। इस प्रकार कवि वैषम्य की ज्वाला से पीड़ित प्रकृति में भी 'साम्य' को देख रहा है। इसीलिए कहता है कि हे जलप्रपात! तेरी आवाज़ 'प्यासों' के लिए है, वह चाहे शाह हो अथवा एक दीन-दलित।

उपर्युक्त भावों को कवि ने क्या ही सुन्दर शब्दों में प्रस्तुत किया है:

वारह वन्तग् च आयरव कते,
छुस बु ज़ानान आसि न तते
बन्द बरादरी तॅ अफ़सरिये
रोज़ी दमा पॉ चादरिये ।।
तति आसि नॅ योनि तॅ मालॅ
कुफ्र, दीनॅक्य कीनॅ मलालॅ
न अमीरी न गदागरिये
रोज़ी दमा पॉ चादरिये ।।
त्रेशि हत्यन क्युत चोन सदा
शाह सु ऑस्यतन ऑस्यतन सु गदा
ऑस्यतन मज़ूर या दफ़्तरिये ।।
रोज़ी दमा.........................।

एक अन्य स्थान पर इसी कविता में वे कहते हैं, "तुम अपने मोती के दानों की

मालायें बना रही हो, और सात समुद्रों में भी गोते मारती हुई दिखाई दे रही हो। तेरे इस अद्भुत सौन्दर्य को देखने के लिए लन्दन के धोखेबाज़ आये हैं—''

माल्य करान मो'ख्तन तॅ लदरन
छाल्य मारान मंज़ सतन सो'दरन।
वुछिनि फंद बाज़ लंदनॅक्य तरियॆ
रोज़ि दमा पाँचादरियॆ।

'आज़ाद' अपनी सामयिक राजनीति के प्रति भी पूर्णतः जागरूक था और इसीलिए उसने अंग्रेज़ों की चालों से अपने देशवासियों को सदा ही सचेत किया। प्रायः हर एक स्थान पर कवि के अपने कर्त्तव्यों के प्रति जागरूक होने का हमें संकेत मिलता है। एक साधक कवि की यही महत्वपूर्ण विशेषता होती है।

'व्यथ' (वितस्ता) नामक कविता में वितस्ता को वेरीनाग की परी के नाम से सम्बोधित करते हुए कश्मीरियों के लिए एक सन्देश दिया है। वितस्ता कश्मीर के लोगों के जीवन का एक प्रमुख अंग है। इसलिए उससे सम्बोधित होकर कवि कहता है कि 'कश्मीरी द्वैत में डवे हुए हैं अतः उन्हें एकता का पाठ पढ़ा, जिस से यह लोग भी तर जाते''—

दो'गन्यारन मॉर्य कॉशिरियॆ,
ह्यॆछनावतक कुनिरुक साज़
यिम ति गछहन तारॅ तर्य तरियॆ॥

'आज़ाद' की प्रगतिशील कविताओं में उनकी 'यिथी वलवला पैदॅ कर नवजवानों' (ऐसे ही वलवले और उत्साह हे नवयुवक, उत्पन्न कर), 'पज़ि शमशेरे गिन्दुना कर' (सच्ची तलवार से खेला कर), मो'ज़ूरो (हे, मज़दूर !) आदि अधिक प्रसिद्ध हैं। तरुणों को हिम्मत बन्धाते हुए कवि कहता है, कि तू अपने में दृढ़ निश्चय पैदा कर और क्रांति का पग उठा। यह समय 'ग़नीमत' है, तुम्हारा सफ़र दूर का है इसलिए शीघ्रता कर।

'सच्ची तलवार से खेला कर' शीर्षक कविता में कवि ने मेषानुगतिक न्याय को छोड़कर स्वयं अपना रास्ता खोज निकालने के लिए मनुष्य को प्रेरित किया है—

'ब्र्'ठिमिस पतॅ पतॅ पकवनि तीरे,
पानॅ ति ब्रोंह कुन नज़राह कर।
खयि मंज मा गच्छख नयि हंज़ि वेरे
पज़ि शमशेरे गिन्दुना कर।

'मज़दूर' कविता में मज़दूर की शोचनीय दशा को बड़े मार्मिक शब्दों में वर्णन किया गया है और उसे स्वयं अपने भाग्य का फैसला करने के लिये सन्देश दिया है।

उनकी प्रगतिशील (विचारों की) कविताओं में सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उनमें जीवन के प्रति आस्था बड़ी जीवंत है। उन्हें जिन्दगी से प्रेम है। 'शमा' कविता की यह पंक्ति देखिये—

वदनस म्यॉनिस असवुन तराना।
गमस मंज़ छ शादियाना म्योन॥

अर्थात्—मेरे रोने में भी हास्य की लय हैं और उदासी में भी मुझे शादियाने दिखाई देते हैं।

कभी-कभी इन्होंने विनोद-प्रिय होकर व्यंग्यात्मक कविताओं की रचना भी की है। यह किस प्रकार की भविष्यवाणी करते थे इस पंक्ति से वह स्पष्ट होगा—

आलम हा करि याद आज़ाद आज़ाद
अकि सातेँ वुछतेँ याद पावै मदनो।
(संसार आज़ाद को याद करेगा—यह मैं एक बार तुम्हें याद दिलाऊँगा)

● ● ●

गीत

—पृथ्वीनाथ मधुप

पातों के कर हिला हिला कर
शीतल छाया की भाषा में—
बुला रहा है मुझे प्यार से
सरिता तट का—
वह चिनार फिर।

वातावरण गुलाबी सुरभिल !
छवि-सुख, बत-रस !
सरि का बहना :

कल-कल कुल-कुल।
हाय ! हृदय पर—
कितनी सुधियां
आईं घिर घिर।

[सरि तो बहती चली जा रही !]

वह सुख
वह रस
पाने, पीने को—
उर आतुर—

फिर फिर :
कैसे यह रह पायेगा थिर ?
बुला रहा है सरिता तट का—
वह चिनार फिर।

स्वतन्त्रता से पूर्व जम्मू रंगमंच

धर्मचन्द्र 'प्रशान्त'

जम्मू रंगमंच का इतिहास लिखते समय मुझे यही जान पड़ रहा है मानों मैं अंधेरे में मोती टटोलने चला हूं। परन्तु ऐसा भी नहीं है कि २०० वर्ष पूर्व रियासत में किसी ने कभी रंगमंच पर नाटक खेला ही नहीं था। यहां रंगमंच अवश्य रहा होगा और उस पर यदि 'इन्द्रसभा', 'गुलबकावली' और 'चन्द्रावली' नाटक अभीनीत नहीं हुए होंगे परन्तु रामलीला के दृश्य तो अवश्य दिखलाये जाते रहे होंगे। कारण कि रंगमंच का हमारे जीवन के साथ गहरा सम्बन्ध है और उस पर रामचरित का अभिनय सहस्त्रों वर्षों से चला आ रहा है।

सब से प्रथम रियासत में रंगमंच का पता हमें एक प्रसिद्ध ऐतिहासिक 'मस्कीन' द्वारा लगता है। 'मस्कीन' बेगम मुगलानी का सहयोगी था और इतिहासकार था। उसने जम्मू के राजा रणजीत देव के राज्य का वर्णन किया है। उसने लिखा है कि रणजीत देव का राज्य बड़ा विस्तृत था, राज्य में सुख-सम्पदा थी। उतनी शांति जम्मू में गत कई शताब्दियों में नहीं रही होगी। 'मस्कीन' आगे लिखता है कि रणजीत देव के शासन में नाटक मण्डलियां नाटक खेलती थीं और वे धार्मिक कथायें ही अभिनीत करती थीं। 'मस्कीन' ने एक नाटक, जो भगवान् राम के चरित पर आधारित था, अपनी आंखों से देखा था। उस समय का यह उद्धरण हमें आश्चर्य में डालता है। कि जम्मू जैसे स्थान में भी अठारहवीं शताब्दी में, नाटक अभिनीत होते थे। राजा रणजीत देव के राज्यकाल के उत्तरार्ध में जम्मू में भगदड़ मच गई और यहां पंजाब की ओर से

आक्रमण होने आरम्भ हो गये। राजा रणजीत देव के समय के अन्तिम वर्ष बड़े ही दारुण रहे हैं। तत्पश्चात् यहां शांति महाराजा गुलाबसिंह जी ने ही स्थापित की थी। परन्तु महाराजा गुलाबसिंह का समय भी युद्धों में ही बीता और यह स्वाभाविक है कि उस समय सांस्कृतिक कार्य नहीं रहे होंगे। उसके उपरान्त महाराजा रणबीरसिंह जी का समय जम्मू की सुख-सम्पदा, वैभव, ऐश्वर्य और शांति को लौटा लाया। यही कारण है कि उन दिनों में साहित्यिक चर्चा और सांस्कृतिक कार्यों का काफ़ी जोर रहा। महाराजा रणबीरसिंह जी के समय यहां कोई नाटक मण्डली स्थापित नहीं हो सकी, परन्तु मथुरा और वृन्दावन से लाई हुई मण्डलियों द्वारा कृष्ण या रामचरित अभिनीत होता रहता था। नरेश द्वारा इन मण्डलियों को पुरस्कार मिलते रहते थे। उस समय कुछ व्यक्तियों ने जम्मू में नाटक मण्डली खोलने का प्रस्ताव रखा था परन्तु वह बात सिरे नहीं चढ़ सकी। महाराजा साहब का निधन १८५४ वि० में हो गया और उनकी मृत्यु के कुछ मास पूर्व रघुनाथ कम्पनी का नामकरण हो चुका था। मण्डली तो बन गई परन्तु इसने किसी नाटक के अभिनय का नाम नहीं लिया, कारण यह बतलाया जाता है कि महाराजा साहब कोई छः मास तक मृत्युशय्या पर पड़े रहे और उनकी बीमारी में भला मनोरञ्जन के कार्य किस प्रकार हो सकते थे?

महाराजा प्रतापसिंह का राज्य भी काफी सुखमय था। दूसरे महाराजा साहब को सांस्कृतिक उत्सवों का शौक भी बहुत था। उनके राज्य के कुछ वर्ष उपरान्त जम्मू में रघुनाथ कम्पनी का स्थायी रूप में जन्म हो गया। इसके निर्माण में राजा रामसिंह और रियासत के समकालीन दीवान अमरनाथ जी का बड़ा सहयोग रहा। उन्होंने जम्मू में रंगमंच के उद्गम और उसकी प्रगति में प्रशंसनीय काम किया। सब से प्रथम रंगमंच की स्थापना रघुनाथ जी के मन्दिर के प्रांगन में की गई और यहां कई वर्ष तक नाटक खेले जाते रहे। महाराजा प्रतापसिंह १९४२ वि० में राज्य गद्दी पर बैठे और उससे ६ वर्ष उपरांत ही स्थायी रूप में रघुनाथ कम्पनी की स्थापना हुई। उस समय भारतीय रंगमंच प्रौढ़ अवस्था को प्राप्त हो चुका था। इन्द्र सभा का तहलका उत्तरी भारत में मच चुका था और उसकी ख्याति ग्राम-ग्राम में पहुंच रही थी और परिणामस्वरूप जगह-जगह नाटक कम्पनियों की स्थापना हो रही थी।

दिल्ली में रामा थियेटर स्थापित हो गया था और पुरानी कोतवाली के पास इसके नाटक अभिनीत भी हो रहे थे। पता चलता है कि रामा थियेटर के दो अभिनेता जम्मू बुलाये गये और उन्होंने जम्मू वालों को रंगमंच सम्बन्धी बातें सिखलानी आरम्भ कर दी थीं। रघुनाथ कम्पनी ने प्रथम रामलीला खेलने का कार्य अपने हाथ में लिया। पहले मूक राम नाटक खेला जाता रहा जो किसी रामायणी पण्डित की देखरेख में चलता था। इसमें अभिनेताओं को शरीर के अंगों के हाव भाव द्वारा ही अपना काम

सीमित रखना पड़ता था। कहीं कहीं चौपाई अथवा दोहा बोल दिया जाता था। वि० १९६० में रघुनाथ कम्पनी ने धार्मिक नाटकों के अतिरिक्त सामाजिक नाटक खेलने भी आरम्भ कर दिये थे। यह स्मरण रखने की बात है कि रघुनाथ कम्पनी को धर्मार्थ विभाग आर्थिक सहायता देता था और इसी कारण इस कम्पनी को पैसे-धेले की कभी कमी प्रतीत नहीं हुई। इसमें रियासत के बाहर से कुछ और भी अभिनेता आ मिले थे। उनके कारण भी इसकी बड़ी ख्याति हुई। जम्मू में रेल आ चुकी थी और इसके कारण भी रंगमंच के प्रसार को बड़ी सुविधा मिली। नाटकीय तथा रंगमंचीय सामग्री बाहर से लाने की दिक्कत नहीं रही। राजकीय प्रश्रय हो और ख्याति प्राप्त अभिनेता जिस मण्डली में हों उसका नाम क्यों न चमके। यही हुआ आखिर। रघुनाथ कम्पनी का नाम रियासत के बाहर भी प्रसिद्ध हो गया। पता चलता है कि उस समय जम्मू में पंजाब से लोग नाटक देखने आने लगे। इससे कम्पनी को बड़ा प्रोत्साहन मिला।

पारसी कम्पनियों में 'विक्टोरिया कम्पनी' का नाम बड़ा था और भारत के कोने-कोने में उसकी धूम मची हुई थी। यह कम्पनी हर जगह घूम रही थी और एक दिन लुधियाना पहुंच गयी। वहां जम्मू के कुछ अभिनेता चले गये और उन्होंने कम्पनी के मालिकों को जम्मू आने का निमन्त्रण दिया। रघुनाथ कम्पनी का नाम भी उनके कानों तक पहुंच चुका था। अत: वे जम्मू आने को तैयार हो गये। यह कम्पनी जम्मू आई और यहां पर इसका बड़ा स्वागत हुआ। महाराजा साहब ने ग्रीन हाल (आज का असेम्बली हाल) रंगमंच बनाने के लिए दे दिया और विक्टोरिया के समस्त नाटक यहां अभिनीत हुए। उन दिनों यहाँ शाही घराने में कोई शुभ कार्य था (सम्भवत: महाराजा हरिसिंह जी के मुण्डन-संस्कार) इस कारण नगर में काफ़ी रौनक थी। नाटक कम्पनी के सारे खेल खूब चमके। महाराजा साहब स्वय खेल देखने आते थे और अभिनेताओं को पुरस्कार दिया करते थे। कई दिनों के उपरान्त नाटक कम्पनी जम्मू से वापस गई परन्तु रघुनाथ कम्पनी वालों को भारत भ्रमण की प्रेरणा देती गई। उसके कुछ समय बाद ही रघुनाथ कम्पनी ने जम्मू शहर छोड़ कर पंजाब में नाटक खेलने के लिए प्रस्थान किया। पहला नाटक सियालकोट में खेला गया। वह नाटक सफल नहीं रहा। इसका कारण यह था कि सियालकोट की जनता इस प्रकार के नाटक देखने की आदी नहीं थी। इस कम्पनी का दूसरा नाटक कुछ सफल रहा। फिर कम्पनी वहां से लुधियाने चली गई। लुधियाना पंजाब का फलता-फूलता शहर था। यहां पर एलफ़्रेड तथा विक्टोरिया कम्पनी कई-कई दिन डेरे डाले रहती थीं। लुधियाना में रघुनाथ कम्पनी को अधिक तो नहीं परन्तु कुछ-कुछ सफलता अवश्य मिली। लुधियाना शहर उस समय रंगमंच की कसौटी समझा जाता था और इस नगर में जो कम्पनी सफलता प्राप्त कर जाती उस का नाम चमक उठता था। उस समय स्व० आगा हश्र कश्मीरी ने

शेक्सपियर के नाटकों का उर्दू अनुवाद करना आरम्भ कर दिया था और 'ज़हरी सांप', 'किंग लियर, 'असीरे हविस' और 'सफ़ेद खून' इत्यादि नाटक रंगमंच पर बड़ी सफलता प्राप्त कर चुके थे। रघुनाथ कम्पनी ने स्व० हश्र के नाटक भी खेले।

लुधियाना से कम्पनी जेहलम चली गई और कुछ दिन वहां ठहर कर रावलपिण्डी जा पहुंची। कहा जाता है कि रावलपिण्डी पहुंच कर कम्पनी की नौका डगमगाने लगी। इसका कारण एक तो यह था कि इसका कोई कुशल मैनेजर नहीं था। इस कारण आर्थिक दृष्टि से इसकी अवस्था शोचनीय हो रही थी और दूसरे जो प्रबन्धक थे उन्हें बाहर जाकर किस प्रकार काम करना होता है, इस बात का बिल्कुल ही अनुभव नहीं था। फिर भी कम्पनी में सहयोग लाने का यत्न किया गया और कम्पनी पेशावर पहुंच गयी। पेशावर भी थियेटर की कसौटी समझा जाता था। वहां पहुंच कर रघुनाथ कम्पनी ने पहला खेल 'चन्दावली' खेला और उसके बाद 'इन्द्र सभा'। इनको पेशावर की जनता ने पसन्द नहीं किया। दो ही नाटक खेलने के उपरान्त कम्पनी की कमर टूट गई। कहा जाता है कि अभिनेताओं की आपस में तू-तू मैं-मैं हो गयी। फिर यत्न किया गया कि कम्पनी का नाम बच जाय परन्तु बेकार गया। मरते मरते रघुनाथ कम्पनी ने दो तीन नाटक अभिनीत किये परन्तु कुछ नहीं बन पाया। कम्पनी के लिए भयानक समय था। अभिनेता विद्रोह कर रहे थे। प्रबन्धक एक दूसरे से रूठे बैठे थे। अब तो कम्पनी को जम्मू पहुंचना दूभर जान पड़ रहा था। अन्ततः जम्मू वाले यहां चले आये और बाहर वाले वहीं से भाग गये। रघुनाथ कम्पनी की दुर्गति को देखकर फिर किसी को यहां रंगमंच बनाने का साहस ही नहीं हो रहा था। परन्तु कुछ अभिनेता तो यहां थे ही और वे निकम्मे किस प्रकार बैठ सकते थे? उन्हें तबले की थाप और घुंघरूओं की झनकार के स्वप्न आते रहते थे। परिणाम स्वरूप एक और रंगमंच का उद्गम दिखलाई पड़ने लगा। उस समय अलौद्दीन, पं० शिवराम 'नाटकी' और भगतराम के नाम प्रसिद्ध थे। उन्होंने इस क्षेत्र में खूब ख्याति प्राप्त भी कर ली थी। उस समय कुछ लोगों ने महाराजा साहब से प्रार्थना की कि वे नाटक कम्पनी की फिर स्थापना में सहायता करें। वे मान गये। अब प्रश्न उठा कि थियेटर कम्पनी खोली जाए अथवा क्लब। कारण, रघुनाथ कम्पनी का सब को कटु अनुभव था, इसलिए सब ने यही उचित समझा कि जम्मू में थियेटरिकल क्लब ही खोली जाय। क्लब खुली, जिसके पहले सर्वेसर्वा दीवान अमरनाथ थे। दीवान साहब ने अपने मन्दिर (ज्वाला सहाय) में मण्डुआ (रंगमंच) बनाया। रंगमंच का आगे का भाग पक्का था परन्तु कुछ भाग कच्चा रहा। इसका व्यय महाराजा साहब के प्राइवेट विभाग से मिला। इसका नाम रखा अमेचुअर क्लब। कारण इस बार इसमें वही अभिनेता आये जो व्यवसाय से अभिनेता नहीं थे। उन्हें अभिनय से केवल अनुराग था। क्लब बन गयी। राज-संरक्षण के

कारण इसे कोई असुविधा नहीं रही । रंगमंचीय सामग्री भी आ गयी और चित्रकार भी परदे बनाने के लिए बाहर से बुला लिया गया । जम्मू में आगे ही अभिनेताओं की कमी नहीं थी परन्तु दो अभिनेता बाहर से बुलाये गये । प्रथम नाटक अभिनय के लिए चुना गया । रिहर्सल होती थी और उसकी खबरें महाराज तक पहुंचाई जाती थीं। महाराजा साहब ने अमेच्यर क्लब के उत्थान में बड़ी दिलचस्पी दिखलाई । रिहर्सलों के विषय में खूब पूछ-ताछ करते रहते थे । चन्द्रावली खेल तैयार हुआ और उसका अभिनय मन्दिर दीवान ज्वालासहाय में किया गया । उस दिन जनता काफी संख्या में आ पहुंची थी, इसलिए क्लब वालों को बहुत प्रोत्साहन मिला । नगर में नाटक का तहलका मच गया । उन दिनों न्यू एलफ्रैड कम्पनी जम्मू आई थी और इसके खेल भी ग्रीनहाल में होते थे । स्थानीय कलाकारों को न्यू एलफ्रैड से अभिनय-कला को समझने में काफी सहायता मिली ।

अमेचुअर क्लब का भाग्य ऊंचा था, इसलिए इसका संचालन एक योग्य व्यक्ति के हाथ में आ गया । वे ए० एन० पूर्वी साहब थे । वे विदेश में काफी समय काट कर आये थे और उनकी रुचि कमाल की थी, वे कला के पूरे पारखी थे । उन की योरुपियन पत्नी भी उनके साथ रहती थी । वे कभी कभी गेटकीपरी का काम भी करती थी । पूर्वी साहब के आने के साथ क्लब को अद्वितीय कलाकार मिल गये । वे थे कप्तान रामकृष्ण और कृष्णचन्द कत्याल । इन के साथ ज्ञानचन्द कत्याल का सहयोग रहा । कप्तान रामकृष्ण क्रिकेट के खिलाड़ी थे और वे महाराजा साहब की क्रिकेट टीम का नेतृत्व कर रहे थे । वे उर्दू के शायर भी थे और अच्छे गद्य-लेखक भी । लाहौर से आये थे और वहां नाटक कम्पनियों से उन को काफी अनुभव प्राप्त हुआ था । वे क्लब के डायरेक्टर चुन लिए गये और उन्होंने अभिनेताओं को तैयार करना आरम्भ कर दिया । इस समय स्व० नारायणप्रसाद 'बेताब' का नाटक 'महाभारत' और आगा हश्र का 'बिल्वा-मंगल' तहलका मचा रहे थे । दोनों नाटक अभिनय के लिए चुने गये । पहले 'महाभारत' का अभिनय आरम्भ हुआ । इसमें दुर्योधन का काम कृष्ण चन्द कत्याल को दिया गया और विदुर का कप्तान रामकृष्ण को । द्रौपदी का अभिनय ज्ञानचन्द कत्याल के सपुर्द हुआ । कृष्णचन्द कत्याल का अभिनय इतना लोकप्रिय हुआ कि उनके जोड़ के इनेगिने अभिनेता ही भारत में समझे जाने लगे । द्रौपदी का अभिनय बदल कर एक और व्यक्ति को दिया गया परन्तु बाद में पण्डित घनश्याम इस क्षेत्र में उतर आये । उन की आयु छोटी थी और गला भी मधुर था । पहली बार ही उन्हें दर्शकों ने बेहद पसन्द किया और थोड़े ही दिनों में ऐसा समझा जाने लगा कि वे द्रौपदी का अभिनय करने के लिए ही उत्पन्न हुए हैं । जम्मू में 'महाभारत' की

खूब धाक मच गयी और महीनों तक उसका चर्चा चलता रहा। महाराजा साहब की आज्ञा से अमेचुअर-क्लब गर्मियों में श्रीनगर चली जाती थी और छः मास तक वहीं पर नाटक खेले जाते थे। रंगमंच राजप्रासाद के सामने बसन्त बाग में था।

अमेचुअर-क्लब में जगदीश व रामू भी स्त्रियों का अभिनय करते थे जो काफी सफल भी रहे। 'महाभारत' और 'बिल्वा-मंगल' में भगवान् कृष्ण का अभिनय इन्द्रसेन करते थे। साहबज़ादा नूर मुहम्मद और हसन का सहयोग क्लब को प्राप्त था। साहबजादा तो लेखक थे, परन्तु हसन अभिनेता। उन के साथ मिसेज हसन भी क्लब में आती थीं। उन्होंने गाने और नृत्य के विषय में यहां के अभिनेताओं को कई गूढ़ बातें भी बतलाईं। पण्डित घनश्याम ने गाने में उन से कई बारीकियों को समझने में सहायता पाई। इनकी देखादेखी कई युवक इस क्लब की ओर आकर्षित हुए। कारण एक यह भी था कि पूर्वी साहब इन्सपैक्टर जनरल कस्टम थे और कृष्णचन्द कत्याल पोलिटीकल सैक्रेटरी। उन का शासन में अच्छा प्रभाव होने के कारण नौकरी मिलने में सुविधा रहती थी। इसलिए भी कई युवक क्लब में आ गये और इनके कारण क्लब चमक उठी।

वि० सं० १९७८ में राजा जगदेवसिंहजी का विवाह था और इस अवसर पर पर सूर्यविजय नाटक कम्पनी जम्मू में बुलाई गयी। इसको भी ग्रीन हाल मिला। सात-आठ नाटक खेले गये जिनमें 'सावित्री सत्यवान' काफी पसन्द किया गया। महाराजा साहब स्वयं नाटक देखने के लिए आते थे। इधर अमेचुअर-क्लब भी 'किंग लियर', 'जहरी सांप' व 'सफेद खून' रंगमंच पर अभिनीत कर रही थी और जम्मू के रंगमंचीय-इतिहास में वह समय बड़ा महत्व का था। एक दिन में दो-दो नाटक अभिनीत हो रहे थे ओर वे भी अद्वितीय।

अमेचुअर क्लब का दूसरा नाटक 'बिल्वा-मंगल' भी बेजोड़ निकला। इस में बिल्वा-मंगल का अभिनय कप्तान रामकृष्ण, चिंता वर्मा, पं० घनश्याम और रामदास (बिल्वा के पिता) का कृष्णचन्द कत्याल और कृष्ण का इन्द्रसेन कर रहे थे। पात्रों का निर्वाचन कुछ ऐसे शुभ-मुहूर्त्त में हुआ कि नाटक की ख्याति रियासत के बाहर भी जा निकली। श्रीनगर के बसन्त बाग में यह नाटक अभिनीत हो रहा था और उपस्थिति भी बड़ी थी जिसमें कुछ धनाढ्य पर्यटक भी बैठे थे। उन में से कराची के एक सेठ ने पं० घनश्याम को १०१ रुपया पुरस्कार के रूप में दिया और कहा कि यह भगे का छोटा भाई मालूम पड़ता है। उस समय भगा (मास्टर भगवान दास) भारतीय रंगमंच के उज्ज्वल रत्न समझे जाते थे। पं० घनश्याम को इसी अभिनय पर एक स्वर्णपदक भी मिला था और कप्तान रामकृष्ण को बिल्वा मंगल के सफल अभिनय पर दो-तीन सोने के तग़मे मिले थे।

सं० १८८२ में महाराजा प्रतापसिंह जी का निधन हो गया और उसके उपरान्त महाराजा हरिसिंह जी के राज्याभिषेक की तैयारियां होने लगीं। इस पर नाटक खेलने के कार्यक्रम पर विशेष स्थान दिया गया। जम्मू की अमेचुअर-क्लब को दस हज़ार रुपया नाटक खेलने के लिए मिला और कलकत्ते की प्रसिद्ध नाटक कम्पनी मदन को निमन्त्रण भेज दिया गया। कम्पनी राज्याभिषेक से काफी दिन पहले आ पहुंची. उसे ८० हज़ार रुपया मिला। अमेचुअर-क्लब का मण्डुआ (रंगमंच) दीवान-मन्दिर में ही था परन्तु मदन को अजायबघर का बड़ा हाल दिया गया। जम्मू में एक साथ दो-दो नाटक कम्पनियां नाटक खेलने लगीं। मदन में उस समय भारतीय रंगमंच के चोटी के अभिनेता मास्टर भगवानदास और मास्टर निसार थे। इन दोनों की धाक उत्तरी भारत में जगह जगह मची हुई थी। भगवानदास उस समय प्रौढ अवस्था में पैर रखने वाले थे, इसलिए उन्होंने स्त्री-अभिनय छोड़ दिया था। स्त्री-अभिनय मास्टर निसार कर रहे थे। मदन ने कितने ही नाटक खेले जिन में 'कृष्ण-सुदामा' को जनता ने बड़ा पसन्द किया। इसमें भगवान् कृष्ण का अभिनय मास्टर भगवान् दास और सुदामा की पत्नी (शारदा) का मास्टर निसार ने किया था।

इधर अमेचुअर-क्लब ने महाभारत, बिल्वा मंगल इत्यादि नाटकों को खेलने की तैयारी की थी और 'शोला-ए-इश्क' विशेष रूप से तैयार किया। 'शोला-ए-इश्क' आग़ा हश्र कश्मीरी का 'यहूदी की लड़की' ही था, जिस में थोड़ा सा परिवर्तन किया गया था। इसमें अजरा यहूदी का अभिनय कप्तान रामकृष्ण, ब्रूटस का कृष्णचन्द कत्याल कर रहे थे। यह नाटक उच्चकोटि का इसलिए भी कहलाया कि तीन प्रसिद्ध अभिनेता उत्तर प्रदेश से मंगवाये गये थे। वे थे वाहिद,, हामिद और राशिद। हन्ना का अभिनय वाहिद कर रहा था। वह खूबसूरत था और उसकी आयु भी हल्की थी। हन्ना बने हुए वह बिल्कुल रोमन लड़की दिखलाई पड़ता था। कॉमिक पार्ट में गाबड़-नंग का अभिनय भी बाहर का अभिनेता कर रहा था। इस नाटक को सरकारी सहायता केवल आर्थिक ही नहीं थी, बल्कि सरकारी तोषाखाना से कीमती वस्त्र और आभूषण भी मिले थे। रंगमंच के लिए परदे मदन गोपाल और अल्ला बख्श ने तैयार किए थे और गानों की तर्ज़ें सुप्रसिद्ध गायक झण्डे खान से प्राप्त की थीं। झण्डे खान स्वयं यहां नहीं आये परन्तु तर्ज़ें उन्हीं की बनी थीं। 'शोला-ए-इश्क' का खूब तहलका मचा। इसे देखकर सभी को मानना पड़ता था कि खेल लाजवाब है। कप्तान रामकृष्ण और कृष्ण चन्द कत्याल का अन्तिम दृश्य का संवाद अद्वितीय था। मदन थियेटर वाले इस नाटक को देखने आये और सब ने नाटक की बड़ी प्रशंसा की। यह नाटक कितनी ही बार जम्मू में खेला गया और लोगों ने इसे बार बार देखा।

जब से अमेचुअर-क्लब बनी थी 'शोला-ए-इश्क' जैसा ज़ोरदार खेल उसने कभी

भी रंगमंच पर अभिनीत नहीं किया था । इस नाटक को देखने के लिए कई राजे-महाराजे (जो राज्याभिषेक में आये थे) देखने आये और सब ने इसकी बड़ी प्रशंसा की।

राजतिलक के उपरान्त भी कुछ खेल अभिनीत किये गये जिनमें "चलता पुर्ज़ा" ने ख्याति प्राप्त की । इसमें हास्य रस का पुट काफी था । कॉमिक काम करने वालों में लछमन दास का नाम प्रसिद्ध था ही । परन्तु 'चलता पुर्ज़ा' खेलते समय हामिद और वाहिद रियासत से चले गये थे । इसमें स्थानीय कलाकार ही सम्मिलित हुए । अमेचुअर-क्लब का एक और नाटक रंगमंच पर चमका, वह 'परिवर्तन' था । उसमें कप्तान रामकृष्ण मुख्य भूमिका निभा रहे थे और पत्नी लक्ष्मी का अभिनय भगतराम (पुराने अभिनेता) कर रहे थे । पं० घनश्याम ने विरया का काम बड़े सुचारू रूप से निभाया ।

इस समय पंजाब की एक कम्पनी जम्मू आई और उसने मन्दिर ज्वाला सहाय में कितने ही नाटक अभिनीत किये, जिन में 'अनमोल मोती' काफी चमका । इस कम्पनी के साथ दो तीन स्त्रियां भी थीं जो स्त्री-पात्रों का अभिनय करती थीं । निर्देशक मास्टर रहमत थे । वे पजाब के प्रसिद्ध अभिनेता गिने जाते थे ।

कुछ दिन के बाद यह कम्पनी श्रीनगर चली गई और वहां जाकर कम्पनी टूट गई । जम्मू में राम लीला का अभिनय बड़ी देर से चला आ रहा है और कुछ नाट्य-संस्थाएँ केवल इसी को खेलने के लिए बनती रही हैं । अमेचुअर क्लब ने भी रामलीला दो-चार बार खेली थी और नाटकों की भांति वह भी सफल रही । दशरथ का अभिनय कप्तान रामकृष्ण, राम का देवकुमार, केकई का पं० घनश्याम करते रहे । पं० गोविन्दराम का सीता का अभिनय भी बड़ा सफल रहा ।

श्री परशुराम नागर की भी जम्मू रंगमंच को बड़ी देन है । इन्होंने जम्मू में नाट्य-संस्थाओं के प्रसार के लिए सराहनीय कार्य किया है । प्रसिद्ध फिल्मी अभिनेता स्व० के० एल० सहगल और ओमप्रकाश उन्हीं के शिष्यों में कहे जाते हैं । इन्होंने अधिकतर धार्मिक नाटकों का ही प्रदर्शन किया था । नागर जी राम का अभिनय बड़ी सफलता के साथ निभाते रहे हैं । पण्डित देवराज शास्त्री जी के संरक्षण में एक नाट्य संस्था रघुनाथ मन्दिर में काफी समय तक प्रदर्शन करती रही है । जम्मू रंगमंच को श्री सनातन धर्म नाटक समाज की देन भी सराहनीय रही है ।

● ● ●

गीत

मोहन निराश

बनपाखी तुम सुनो, सुनाती हूँ मैं आदिम गीत !
मैं चट्टान कड़ी टेढ़ी हूँ प्रस्तर-युग की लोक कहानी
जिस के हर पहलू में रहते नंगा यौवन, नग्न जवानी
एक नहीं, सौ बार आज तक साथ साथ वे सोये, जागे
जब भी मिले, मिले पत्थर से, अलग हुये तो पानी पानी !
बनपाखी यह यौन-लग्न औ' मीन-राशि है प्रीत !

●

कश्मीरी कहानी

चूज़े की मौत

अख्तर मुहीउद्दीन

"आह, चूज़ा मर गया !"—उसने कहा ।

"मर गया, तो क्या हुआ ?" मैंने सोचा, लेकिन कहा नहीं ।

"सुनते हैं आप ?" उसने फिर कहा—"चूज़ा मर गया !"

मैंने उसकी ओर नज़र उठायी । भलामानस आदमी, उजले धुले कपड़े पहने हुए, पागलपने का कोई भी निशान नहीं, अलबत्ता उसके सिरके बाल उलझे-उलझे थे और आंखों में सुर्ख डोरे पड़े थे । उसके दाहिने हाथ में काले रंग का एक मुर्दा चूज़ा था और वह कभी इस मुर्दा चूज़े की तरफ और कभी मेरी तरफ देख रहा था ।

मैं कुछ भी न कह सकता था । मैंने हज़ारों चूज़े मरते देखे हैं । चूज़े की मौत कोई बड़ी बात नहीं । किसी को चील लेकर उड़ जाती है, किसी को कुत्ता खा जाता है, कोई बस यों ही मर जाता है, यहां तक कि कोई घर की मालकिन के पांव-तले आकर मर जाता है । कोई बड़ी बात नहीं चूज़े की मौत ।

और जो चूज़ा उसके दाहिने हाथ में था, वह ऐसा भी नहीं दिखता था कि उसके मरने से एक शरीफ आदमी पागलपना बकने लगे । सिर पर काले रंग के चन्द बेतरतीब-से छोटे-छोटे बाल और लम्बी-टेढ़ी टांगें । पीठपर सफ़ेद पाउडर-सा छिड़का हुआ, जो बहुत भद्दा मुझे दिखता था । लगा, जैसे कोई मुर्दार चीज़ है, लेकिन फिर भी उसका दिल रखने की खातिर और कुछ चूज़े के सम्बन्ध में और आगे सुनने के लिए मैंने उससे पूछा—"यह शायद अच्छी नस्ल का चूज़ा था, क्यों साहब ?"

"नस्ल को गोली मारो, हज़रत !" उसने तीखेपन से जबाव दिया—"हमें नस्ल मालूम करके क्या लेना है ?"

क्षण भर ठहरकर उसने फिर कहा—"मालूम नहीं, किस नस्ल का था। शायद किसी खास नस्ल का नहीं था। खैर..." और उसने एक लम्बी आह खींची, कन्धों को झटका दिया, अजीब नज़रों से चूज़े की तरफ देखा और कहा—"मुझे कहां मालूम था..."

इतना कह कर वह फिर से खामोश हुआ। शायद उसकी आंखों में आंसू आ रहे थे।

"रहे नाम बस उसका !" मैंने उसको तसल्ली देने के लिए आसमान की तरफ़ आंखें उठायीं।

"किसका ?" उसने गुस्से भरे लहजे में पूछा। लेकिन उसकी नज़रें मेरी तरफ़ नहीं थीं, बल्कि अपने जूते की नोक की तरफ़ थीं, जैसे वह अपने सवाल का जवाब जूते की नोक से पूछ रहा था।

मैं लाजवाब हो गया और अब इस नियत से मुर्दा चूज़े को घूर-घूर कर देखने लगा कि उसके छिपे हुस्न की कोई झलक मैं भी पा सकूं, जो इस भलेमानस को नज़र आ रही है। लेकिन मुझे निराशा हाथ लगी। इस मुर्दा चूज़े में कोई भी खूबसूरती नज़र नहीं आयी, बल्कि उसके काले रंग की वजह से और उसके मुर्दा जिस्म पर पड़ी हुई धूल के कारण मुझे वह और भी भद्दा दिखाई देने लगा और फिर उसकी पीठ पर न मालूम क्या रोग़न-सा पुता हुआ था। सफ़ेद रोग़न को देखकर मेरी ज़बान खुल गयी। पूछा— 'यह इसकी पीठ पर क्या पोता हुआ है ?"

उसने अब चूज़े की पीठ पर नज़रें गाड़ दीं और इस तरह देखने लगा, जैसे अब तक इस जानिब उसकी नज़रें उठी ही न थीं। फिर उसने उसके पंख इधर-उधर सरकाये और गौर से देखने लगा। मैं भी बड़ी उत्सुकता से चूज़े की पीठ का निरीक्षण करने लगा। चूज़े की पीठ पर वाकई सफ़ेद पाउडर छिड़का गया था और अब यह पाउडर उसके गीले जिस्म की नमी से तर होकर पलस्तर-सा बन गया था।

"च्च्च्च्.. इसी बीमारी ने तो जान ली।" उसने कहा—"सच तो यह है कि इस दुनिया में हरेक अकेला है। मां-बाप, बहन-भाई, सब झूठे रिश्ते हैं।"

"अरे, यह इतना लम्बा-चौड़ा दर्शन बघारने की नौबत क्यों कर आयी ?"—मैंने सोचा।

"यह तो वेटेरिनरी वालों ने इसकी पीठ पर पाउडर छिड़का दिया है।"—उसने मेरी तरफ नज़रें उठाकर कहा।

"तो अब इसको कहीं फेंक दीजिये"—मैंने कहा, "यों हाथ में भींचकर आप इसको कहां ले जायेंगे?"

"जी हां, अब तो इसको फेंकना ही चाहिये"—उसने लाचार होकर कहा, जैसे किसी बहुत प्यारे को दफ़न करने के लिए अपने आपको तैयार कर रहा हो।

"फेंक दीजिये सड़क के उस कोने की तरफ, कोई कुत्ता या कौआ खा जायेगा"—मैंने कहा।

"सड़क के कोने की तरफ?" उसने एकदम गुस्सा होकर मुझ से कहा—"अफ़सोस है तुम पर, दरअसल तुम भी इसी दुनिया में बसने वाले हो!"

"तो फिर इस मुर्दार चूज़े को ठिकाने लगाने के लिए क्या" मैंने सोचा। लेकिन उसने मेरी सोच को काट कर कहा—"मेरा ख्याल था कि तुम बात को समझ सकोगे।"

और फिर जैसे मेरी तरफ से भी निराश होकर उसने कहा—"मेरा ख्याल था, तुम बात की तह तक पहुँच सकोगे। खैर..."

मैं खामोश रहा, जैसे मैंने मज़हब के नाम उसे कोई गाली दी थी और अब शर्मिन्दा था।

"इस बेचारे के पीछे तो हरेक खाने की नीयत से दौड़ा! किसी ने भी इस पर रहम न किया!" उसने कहा और अपना दायां हाथ सीने के करीब रखकर मुर्दा चूज़े पर इस तरह नज़रें जमायीं, जैसे इसकी लाश पर अपनी आंखों की स्वच्छ झीलों का पानी छिड़कने की कोशिश कर रहा हो।

"यह भी न मालूम, कौन से अरमान लेकर इस दुनिया में आया होगा...!" वह जैसे इस मुर्दा चूज़े से बातें कर रहा था या अपने आपसे। और फिर अचानक अपनी सुर्ख आंखें मेरी तरफ उठा कर पूछा—"क्या तुमने कभी फूस के टोकरे में बेदमुश्क जैसा चूज़ा देखा है?"

"हां, देखा है"—मैंने कहा।

"कितना मासूम होता है!"—उसने कहा। "दूध पीता बच्चा, नवजात बछड़ा,

चूज़ा और फूल, इन सबके मिज़ाज एक से होते हैं। इनके अन्दर खौफ का जज़्बा बिल्कुल नहीं होता। ये सब इस तरह महसूस करते हैं, जैसे कुदरत का सारा कारखाना महज़ इनके पालन-पोषण ही के लिए बनाया गया है।"

मैं सुन रहा था और वह कह रहा था—"अगर मैं अपना हाथ ज़रा फिर खींचकर उठाऊँ, तो तुम डर जाओगे। क्यों? इसलिए कि तुम्हारे अन्दर खौफ़ का जज़्बा बालिग़ हो चुका है। तुम अब यह जज़्बा खत्म नहीं कर सकोगे। इसके बरखिलाफ अगर दूध-पीते बच्चे के हलक पर छुरा भी रखो तो भी वह मुसकरायेगा ..समझे?" और यह कह कर वह खुद भी मुसकराया।

"अगर फूल समझ सके कि वह काटा जायेगा, तो इसी खौफ़ से वह पहले ही मुरझा जायेगा।"

मैं मुस्करा नहीं रहा था। मैं सोच रहा था। मेरी आंखों के सामने एक बहुत बड़ा कारवां था—जर्मन दर्शन की तरह अमीर पैन्ज़ी, माशूक से मिलता-जुलता गुलाब, सोने से भरी प्लेट, जैसे सदाबहार और शहनशाहों के ताज पहने जीनिया, ये सब मुसकरा रहे थे, सब खुश थे और आसपास का माहौल परिन्दों की चहचहाहट से गूंज रहा था, जैसे जोगिनें शादी के गीत को गा रही थीं।

"उसकी कुदरत!" मैं सिर्फ इतना कह सका।

"किसकी?" उसने ये लफ्ज़ मेरे मुँह पर पटक दिये।

'डर गये?" उसने मुसकराते हुए मुझसे पूछा—"तुम कितने खोखले हो...... खोखले और कमज़ोर! तुम कुछ भी नहीं जानते। यह चूज़ा न मालूम कहां से एक चील उड़ा कर लायी थी। उसने अपने बेरहम पंजे इसके सीने में पेवस्त किये थे। कहीं बैठकर वह इसे मारती...समझे? वह इसको मारती लेकिन ग़फ़लत से यह उसके पंजों से छूट गया और हमारे मकान के सहन में आ गिरा।"

"तो यह बात है!" मैंने ध्यान से सुनना शुरू किया।

"आंगन में इस पर दो नज़रें एक साथ पड़ीं—एक मेरी और दूसरी मेरे कुत्ते की। हम दोनों इसके पीछे दौड़ें, मैं भी और कुत्ता भी। मैं इसको पकड़ न सका, लेकिन कुत्ते ने इसको पकड़ लिया और उसने इसको मारना शुरू किया। मैंने पत्थर उठाया। खौफ़ से कुत्ते ने इसको अपने मुंह से छोड़कर कहीं दूर पनाह ली। अब मैं अकेला था। यह चूज़ा भाग रहा था अपनी पतली-लम्बी टांगों पर और ज़ोर-ज़ोर से चिऊं-चिऊं कर रहा था--शायद उसको आवाज़ दे रहा था, जिसने फूस के टोकरे में

इसको जिन्दगी दी थी। मगर मुझ से अब कहां भाग सकता था! मैंने इसको पकड़ लिया...मैंने...''

यह कह कर वह क्षण भर के लिए खामोश हो गया। ज़रा देर के बाद 'अहं हं—करके गला साफ किया और कहा—''ज़रा देर के लिए मान लो कि यहां अचानक चीते, सांप या पागल कुत्ते पैदा हो जायें और वह सब के सब तुम्हारे पीछे दौड़ने लगें—तुम्हें काटने और मारने की नीयत से, तब तुम्हारी हालत क्या हो जायेगी? कहो—मैं नहीं जानता। कोई भी नहीं जानता। वह भी नहीं जानता, जिसके पीछे कभी चीते, सांप या पागल कुत्ते दौड़े हों। ऐसे मौकों पर इनसान के हवास फाख्ता हो जाते हैं। इनसान देखता है, चिल्लाता है, भागता है, लेकिन उसको खुद भी मालूम नहीं होता कि वह क्या करता है। मैंने इस चूज़े को पकड़ लिया। खौफ़ से यह कंपकंपा रहा था। खौफ़ से इसका नन्हा दिल धड़क रहा था। खौफ़ से इसकी आंखें फट रही थीं। खौफ़ से यह चिऊं-चिऊं कर रहा था। शायद मिन्नतें कर रहा था। शायद कह रहा था—'अरे, मैंने आप सब का क्या बिगाड़ा है? मैं एक चूज़ा हूं, देखते नहीं, महज एक चूज़ा हूं और बड़ा होकर अगर मुर्गा हुआ, तो बांग दिया करूंगा, नहीं तो अण्डे। मैं और क्या कर सकता हूं? मैंने आप सब का क्या बिगाड़ा है?'

''हम ने घर में मुर्गे पाल रखे हैं। एक मुर्गा तो सुबह-शाम सिर्फ बांग देता रहता है, मुर्गियां 'कुड़-कुड़-कुड़-कुड़' गाती रहती हैं और अण्डे देती हैं। यों समझो, जैसे उनका एक खुशहाल कुनबा है एक पति और चार पत्नियां, सब खुश और मैंने सोचा कि यह चूज़ा इन के साथ ही पल-बढ़ सकता है और जब यह बड़ा हो जायेगा, तो इस को जिबह करेंगे और जिबह करके इनकी बोटियां खायेंगे। मैंने चूज़े को इसी दड़बे में डाल दिया। सोचा कि अपनी जात वालों की सोहबत में इसकी दहशत दूर हो जायेगी। लेकिन सिर्फ एक घण्टे के बाद जब इसकी हालत जानने के लिए मैंने दड़बे के अन्दर झांका, तो तुम जानते हो मैंने वहां क्या देखा?''

उसने मेरी ओर नज़रें फेर दीं। उसके होंठों पर ज़हर भरी मुसकराहट थी। मेरी तरफ इस अन्दाज़ से देख रहा था, जैसे खुद खुदा हो और मैं एक गुनहागार बन्दा। क्षण भर इसी अन्दाज़ से मेरे चेहरे पर नज़रें गाड़कर उसने कहा—''ठूंगे मार-मार कर मुर्गियों ने इस चूज़े की पीठ से सारी खाल उधेड़ दी थी और इसकी पीठ की कमज़ोर चिकनी पतली हड्डियां बिल्कुल नंगी थीं। खून जम कर कलेजी के टुकड़ों की तरह इधर-उधर परों पर जमा था और यह एक कोने में सिकुड़ कर बैठा था, जैसे मायूस और हारा हुआ जुआरी हो।

''मैंने इसको हाथ में उठा लिया। इसने भागने की कोशिश नहीं की। धीमी

आवाज़ से पिच्-पिच्-पिच्-पिच् कर रहा था। न मालूम क्या कह रहा था। शायद यह कि लो, अब मैं मर रहा हूँ, हो गये खुश ? मैं तुम से पूछ रहा हूं, ए इनसान, ए कुत्ते, ए चील, ए मुर्गियों, मैं तुम से पूछ रहा हूँ, हो गये तुम खुश ? मैं अब मर रहा हूं। अब मैं बांग नही दूंगा। अण्ठे नहीं दूंगा कुछ भी नहीं करूँगा। मैं मर जाऊंगा। पिच्-पिच्-पिच्-पिच्...!

"हाथ में उठाकर मैंने इसके सामने चावल के दाने रखे। इसने एक दो दाने उठा लिये। शायद इसको भूख लग रही थी, या शायद यह मेरे दिल को ठेस नहीं पहुंचाना चाहता था...बेनियाज़ (निर्लिप्त) था। कहते हैं, खुदा भी बेनियाज़ है।

"बेटेरिनरी वालों ने इसकी पीठ पर पाउडर छिड़क दिया। मैंने हरारत पहुंचाने के लिए इसको अपने कपड़ों में लपेट लिया। यह अब डरता नहीं था। यह अब किसी भी चीज़ से खौफ़ नहीं खाता था। यह सिर्फ़ 'पिच्-पिच्' करता था, जैसे मेरे मुंह पर जूते मारता था—'हो गये ना अब खुश ? लो, अब मैं मर रहा हूं !'

"और एक घण्टे के बाद यह मर गया !" उसकी आंखों में आंसू छलक रहे थे। वह मुर्दा चूज़े की तरफ़ फिर घूर रहा था और कह रहा था—"सुना आपने ? आखिर यहमर गया !"

● ● ●

बिम्ब-प्रतिबिम्ब

डोगरी कहानी

"पहाड़ी कौआ"

मदनमोहन

गर्मियों के दिन होते या सर्दियों के वह प्रति दिन हमारे हां दूध देने आता था। उसका असली नाम तो गुजरू था परन्तु घर में हर छोटा बड़ा उसे पहाड़ी कौआ ही कह कर पुकारता। असल में उसका उपनाम पहले पहल पूर्णी ने ही प्रचलित किया था और उसे उस नाम से पुकारने के अनेक कारण भी थे। एक तो यह कि वह दूर स्थित सुद्धमहादेव के पहाड़ों का बासी था और दूसरे वह बातूनी बहुत था। कौए की तरह छोटी छोटी आंखें इधर-उधर घुमा कर अपनी बोली में बड़ी ही प्यारी प्यारी बातें करता।

हमारे घर में वह दिन में दो बार दूध देने आता था। सवेरे और शाम को। प्रात: जब सारा घर नींद की गोद में दुबका होता तो हमारे घर की सांकल जोर-जोर से बजने लगती, बेचारी पूर्णी नींद से बोझिल आंखों को हाथों से मलती हुई और "पहाड़ी कौए" पर दांत पीसती हुई उठती। उधर कांएं-कांएं करता, कहकहे बिखेरता इधर-उधर की लाख बातें उड़ाता हुआ वह घर में प्रविष्ट होता—और फिर पूर्णी से उलटी सीधी बातें कहते हुए दूध का डोल उसके हाथ में देता, और हमारी मां जी के कमरे के द्वार "खड़ खड़, खड़ाव," बजने लगते—"उठो मांजी, भोर हो गई।" और हमारी मांजी हंसते-हंसते छोटी-मोटी गालियों का प्रसाद बांटते हुए—"हट कलमुंहे सुबह सवेरे तेरा मुंह देखती हूं और सारा दिन जलते-भुनते कटता है, परे हट!" यह सुनकर

वह खिलखिला कर हंसने लगता । "झूठ माँ जी बिलकुल झूठ । पूर्णी से पूछ लो। वह सुबह-सुबह मेरा चाँद-सा मुखड़ा देखती है तो सारा दिन कितनी प्रसन्न रहती है।" और पूर्णी जलती-भुनती, रसोई घर से बाहर निकल आती—"तुम्हारा मुखड़ा चाँद तो है पर अमावस्या का। सुबह से लेकर रात तक तुम्हारी जिह्वा कैंची के समान 'कुतर कुतर' चलते नहीं थकती, बस 'काएं काएं काएं'—पहाड़ी कौआ।"

पूर्णी की बातें सुनकर वह और भी हँसता और बादलों के समान गरजते उसके कहकहे सारे घर को नींद से झिंझोड़ डालते। बच्चे बिस्तरों में से ही 'पहाड़ी कौआ', कहकर चिल्लाने लगते और दौड़ कर उसकी कमर से जा लिपटते। पांच बजे का आया हुआ वह लगभग सात बजे हमारे घर से जाता। मांजी उसे डांटते हुए कहतीं—"तुम जो इतनी देर तक हमारे घर में बैठे रहते हो औरों के घर दूध कब पहुंचाते होगे?"

वह दूध का खाली डोला उठाता, पूर्णी की ओर मुस्कराती आंखों से देखता और चला जाता—और पूर्णी का मुख अस्त होते हुए सूर्य के समान हो जाता—लाज या क्रोध से यह वही जाने।

गुजरू लगभग पच्चीस वर्ष का होगा सिर पर छोटे छोटे बाल, कानों में मुरकियां छोटी-छोटी चंचल आंखें, "गाढ़े" का कुर्ता पहने वह जाति का ब्राह्मण और देखने में सुन्दर युवक था। हमारी मां जी कभी-कभी विचारतीं कि पूर्णी का विवाह गुजरू से क्यों न कर दिया जाए, परन्तु पूर्णी न जाने क्यों उसे देखकर ही लाल-पीली होने लगती थी। हमारे भैया और भाभी उसे बहुत ही खिझाते। भैया जब उसे कहते—"पूर्णी, जो तुम्हारा पल्ला गुजरू से बांध दिया जाये तो?......" तो—पूर्णी मुट्ठियां कस लेती—"तो मैं पहाड़ी कौए की गर्दन पलभर में मरोड़ डालूं।"

"हे भगवान—तुम तो राक्षसी हो राक्षसी।" भैया हंसते और हमारी भाभी चटखारा लेती—"मन ही मन चाहे उस पर मरती हो—परन्तु पाखण्ड तो करने के लिए ही होता है।"

"मैं उस पर मरूँ? उस पहाड़ी कौए पर?" पूर्णी भाभी की ओर घूर कर देखती—"भगवान की कसम खाकर कहती हूं उस जैसे को तो मैं अपनी जूती भी न लगने दूं।"

भाभी ठहाका मारती—"वाह, तुम्हारी जूती के क्या कहने!"

पूर्णी जूती लगने देगी या नहीं यह तो भगवान ही जाने। परन्तु मांजी हमारे पहले सेवक रामदास के अन्तिम शब्द अभी तक न भूली थीं। मृत्यु शय्या पर पड़े हुए

उसने कहा था, "मैं तो जा रहा हूं, मालकिन परन्तु अब इस छोटी बच्ची (पूर्णी) को आपका ही सहारा है। इसका पालन-पोषण और विवाह-शादी का प्रबन्ध आपको ही करना होगा मांजी।" पूर्णी अब यौवन अवस्था में थी और मांजी ने मन ही मन पक्का निश्चय कर लिया था कि साल-छः महीने में पूर्णी का हाथ गुजरू को सौंप देंगी। परन्तु जब मांजी गुजरू के बारे में पूर्णी की ऐसी बातें सुनती तो कभी-कभी उसे डांट भी देतीं, "ऐसे अनाप-शनाप न बकती रहा कर।"

सायं को जब गुजरू हमारे घर दूध देने आता तो कभी-कभी अलगोजे भी ले आता। तब भैया उसे चारपाई पर बैठा कर पहाड़ी लय सुनते। गुजरू बड़े मीठे स्वरों में पहाड़ी लय उवारता और जब अलगोजे बजा बजा कर थक जाता तब भैया बात-चीत शुरू कर देते, "अपने पहाड़ों की कोई बात कहो गुजरू।"

पहाड़ों का नाम सुन गुजरू कुछ उदास हो जाता—"मेरा घर सुद्धमहादेव के पहाड़ों में है। वे हरे-भरे पहाड़, चीड़ और देवदार के झूमते बृक्ष, सर-सब्ज घास, रंग बिरंगे फूल, कल-कल करते नदी नाले और पहाड़ों पर छाई हल्की हल्की धुंध ओह ! शाहजी, मेरा घर तो स्वर्ग में है परन्तु, क्या कहूं उस स्वर्ग में दरिद्रता बहुत है। हरे भरे पहाड़, ठण्ड के झोंके और झरनों का मीठा पानी तो देते हैं, परन्तु मक्की की रोटियां हमें कम ही प्राप्त होती हैं और मेरे जैसे सैंकड़ों साथी आपके शहरों में जीविका की खोज में वह स्वर्ग त्याग कर चले आते हैं।" यह कह कर गुजरू चुप हो जाता और फिर कोई बात-चीत न होती। वह उठता मां जी को प्रणाम करता ओर अपना खाली डोल उठा कर, रसोई में बैठी पूर्णी को उदास-उदास नजरों से देखता हुआ चला जाता।

एक दिन बड़ी विचित्र बात हुई। गुजरू प्रातः दूध दे गया परन्तु उस रोज किसी ने भी मांजी के किवाड़ न खटखटाये। घर के आंगन में किसी के ठहाके न गूंजे। बच्चे दिन चढ़े तक बिस्तरों में ही दुबके पड़े रहे। धूप चढ़े जब मांजी अपने कमरे से बाहर आई तो उन्होंने पूर्णी को बड़े आश्चर्य से पूछा—"क्या गुजरू आज दूध देने नहीं आया ?"

"आया था, दूध दे गया है, परन्तु कुछ अनमना सा था।"

उस रोज न जाने क्यों पूर्णी का चेहरा भी उतरा सा रहा।

संध्या को जब फिर वह दूध देने आया तो हमने देखा उसकी आंखें बुझी बुझी सी थीं और मुख पर घोर उदासी की कालिमा छाई हुई थी। मां जी ने उससे पूछा—'क्यों गुजरू, राजी तो हो ?"

"हां मांजी, राजी हूं" यह कह कर बिना दूसरी बात किये वह चला गया।

"न जाने क्या बात है। कुछ कहता भी तो नहीं" मां जी के साथ हम सब भी बड़े हैरान हो रहे थे।

अगले दिन फिर घर की सांकल बजती किसी ने न सुनी और पूर्णी के अतिरिक्त किसी को भी उसके आने-जाने की खबर न हुई, परन्तु पूर्णी ने मां जी से कहा—"वह बड़ा ही उदास है, मांजी न जाने क्या बात है। मुझ से पच्चास रुपयों के लिए कह रहा था।"

"तुम ने क्या कहा ?"

"मैंने कहा मां जी से कहूंगी"

उस रोज़ जब वह पुन: दूध देने आया तो बरखा हो रही थी—और हम सभी दालान में बैठे आग ताप रहे थे। माँजी ने उसे पास बिठाया और सहानुभूति से पूछा—"क्या आवश्यकता आ पड़ी पैसों की ? कोई बात है तो कहता क्यों नहीं ?"

पूर्णी भी द्वार की आड़ में खड़ी थी।

वह पल भर के लिए चुप रहा और लम्बी सांस ले लेकर कहने लगा, "क्या कहूं, मांजी ! चार रातें हुईं मुझे सोये हुए।" हमने अब ध्यान से देखा उसकी आंखें सचमुच सूजी हुई थीं वह कहता गया—"जहां मैं रहता हूं उसके समीप ही एक कोठड़ी है। उसमें एक नानवाई रहता है। बड़ा ही दुष्ट व्यक्ति है, मां जी ! पक्का बदमाश। पिछले दिनों वह कहीं हमारे पहाड़ों में गया था और वहां से एक सोलह-सत्रह वर्ष की लड़की को लिवा लाया।" गुजरू यह कहते-कहते रोआंसा सा हो गया—"वह नानवाई कहता है उसने वह पहाड़ी लड़की ४०० रु० गांठ से खर्च करके लाई है। हर रात नशा पी कर वह उस को निर्दयता से पीटता है जैसे वह लड़की मनुष्य न हो पशु हो, और बेचारी चीखती है, चिल्लाती है। और मुझे ऐसे लगता है जैसे मेरे पहाड़ चीख रहे हों लाख-लाख आंसू बहा रहे हों। मैं जब भी उस लड़की को देखता हूं मेरा हृदय जल उठता है। नानवाई दिन को काम पर चला जाता है और भीतर उस लड़की को बन्द करके ताला लगा जाता है। और वह लड़की, खिड़की पर बैठी हुई रो-रो कर सूजी हुई आंखों से नीले आकाश को घूरती रहती है।" यह कहते-कहते गुजरू की आंखों में आंसू आ गए और उसकी आवाज भर आई—"कल उस नानवाई ने उसे बहुत पीटा मां जी। उस धूर्त के साथ कल एक और आदमी आया था, वह नानवाई उस आदमी के हाथ उस लड़की को ४०० रु० पर बेच रहा था, परन्तु वह ग्राहक केवल ३०० रु० देता था। मां जी, मेरे पहाड़ नीलाम हो रहे हैं और इनकी कीमत आंकी जा रही है, तीन-तीन, चार-चार सौ। मार खाकर वह लड़की चीख रही थी—"ओ ! मेरे बाप मुझे

यहां से मुझे ले जा, मैं मर जाऊंगी।" मां जी, मुझ से उसके बैन नहीं सुने जाते। मेरे कानों में आग घूं घूं करने लगती है जब मैं उसकी चीखें सुनता हूं। शिव जी की सौगन्ध अगर मेरे पास पचास रुपये हों तो मैं उस राक्षस के मुंह पर चार सौ नकद मार कर अपने पहाड़ों को मुक्त करवा लूं और उस निस्सहाय को उसके बापू के पास छोड़ आऊं। उसे उस के हरे भरे पहाड़ों को सौंप आऊं, जिनकी परछाइयां वह नीले आकाश में ढूंढती रहती है। गुजरू की आंखें रिमझिम बरस रही थीं—"दो वर्ष की कमाई मेरे पास ३६० रु० हैं, कहीं से पचास और मिल जायें!"

"क्या लाभ है उस लड़की को उसके बापू के पास ले जाने का? वह फिर उसे किसी और नानवाई के हाथ बेच डालेगा।" हमारे भैया ने कहा।

गुजरू ने पल भर भैया की तरफ देखा और फिर एक लम्बी आह भर कर कहने लगा—"आप सच कहते हैं, शाह जी, परन्तु मुझ से वह करुणा बैन नहीं सुने जाते।" गुजरू यह कह कर उठा और डोल पकड़ कर जाने लगा, परन्तु मां जी ने उसे ठहरने को कहा। दूसरे कमरे से पचास रुपये ला कर उसकी हथेली पर रख दिये। "मैं शीघ्र ही लौटा दूंगा, मां जी! आप कितनी दयालु हैं।" यह कह कर वह तेज-तेज कदमों से चला गया और पूर्णी कितनी ही देर ड्योढ़ी की ओट में से उसे जाते हुए देखती रही।

दूसरे दिन सायंकाल जब गुजरू दूध देने आया तब उसके साथ पन्द्रह सोलह वर्ष की लड़की भी थी। वह लड़की बड़ी सहमी-सहमी सी दिखाई देती थी। उसका मुख पीला पड़ चुका था उसका लम्बा कुर्त्ता, सुर्ख 'सुत्थन' पांवों में पहाड़ी जूती और कानों में लटकते काले कुण्डल बतलाते थे कि वह एक भोली-भाली पहाड़ी लड़की है। वह यों डरी डरी सी थी, जैसे कोई पंछी शिकारी के पिंजरे में दुबक कर बैठा हो।

गुजरू ने मां जी से विनती की, "आपको एक और कष्ट दूंगा, मां जी। इसे सात आठ दिनों के लिए अपने पास रखने की कृपा करें। मेरे पास तो कोई ठिकाना ही नहीं, दस दिन के पश्चात् मुझे तनख्वाह मिल जाएगी तब मैं इसे ले जाकर इसके बापू के पास छोड़ आऊंगा।"

मां जी ने पूर्णी को आवाज दी—"पूर्णी तुम दोनों इकट्ठी सो रहा करना। इसे अपने कमरे में ले जा।" पहले तो पूर्णी कुछ आना-कानी करने लगी, परन्तु मां जी के दोबारा कहने पर उसे अपने साथ ले गई।

दो दिन ऐसे ही बीत गये। भाभी उस लड़की को अपने पास बिठाती और बड़े दुलार से उसके साथ बातचीत करती, परन्तु अश्रु थे कि उस लड़की की आंखों से बहते ही चले जाते—"मुझे मेरे बापू के पास छोड़ आओ। मैं मर जाऊंगी। मेरे बापू मुझे ले जा।" वह दिन रात यही रट लगाये रहती। मां जी और भाभी उसे आश्वासन देतीं पर उसकी आंखें हर पल बरसती ही रहतीं।

तीसरे दिन हमें यह देख कर बड़ा अचम्भा हुआ कि पूर्णी ने बन्ती (यह उस पहाड़ी लड़की का नाम था) को नहलाया, उसके कपड़े धोए और उसके बाल भी संवारे—हम बड़े हैरान थे कि पूर्णी के माथे की सिलवटें कहां लोप हो गईं जो उस समय लड़की को पहले दिन देखकर उसके माथे पर यों पड़ी थीं कि दो दिन तक न उतर सकीं।

एक दिन जब पूर्णी बन्ती को नहला रही थी तो भाभी ने हंसते हंसते कहा—"अच्छा ही है जो गुजरू इसे ब्याह ले। देखने को भी सुन्दर है और है भी पहाड़ों को।"

पूर्णी ने पल भर भाभी की ओर देखा—"हूं! ब्याह कर ले"! और भाभी सारा दिन पूर्णी की उस 'हूं' का अर्थ समझने में उलझी रही।

दस दिनों के उपरांत गुजरू को जब वेतन मिला तो वह बन्ती को उसके बापू के पास छोड़ने चल दिया। जाने से पहले ड्योढ़ी में पूर्णी और उसके बीच कुछ बातचीत हुई, परन्तु न जाने क्या क्या बातें हुईं। भाभी और भैया ने इस बारे में पूर्णी से बहुत बार पूछा परन्तु उसने कुछ भी न बतलाया।

गुजरू को गए हुए बारह दिन बीत गए। उसके जाने के दो-चार दिन तक घर में उसकी ही चर्चा होती रही, और उसकी बातों को याद करके भाभी, भैया और बच्चे कितनी कितनी देर हंसते रहते, पर पूर्णी को न जाने क्या हो गया था, न वह हंसती न वह बोलती। सारा दिन बुझी-बुझी सी रहती। भैया जब सन्ध्या को घर लौटते तब उन से बड़ी उत्सुकता से पूछती—"कोई चिट्ठी आई?" उन बारह दिनों में उसने लगभग बीस बार यही पूछा। तेरहवें दिन गुजरू की चिट्ठी आई। भैया ने पढ़ कर सुनाया कि बन्ती का बापू उनके पहुंचने से चार दिन पहले शराब के नशे में एक पहाड़ी से गिरा और मर गया। अब इस संसार में बन्ती का कोई भी नहीं! गुजरू ने लिखा था—"मुझे कुछ नहीं सूझता कि मैं क्या करूं। अगर मैं उसे अकेली छोड़ जाऊं तो उसका क्या होगा? पर ईश्वर अवश्य सहायता करेगा। मैं शीघ्र ही कुछ प्रबन्ध करके लौट रहा हूं। मां जी को चरणवन्दना और पूर्णी को कहना वह चाहे मुझे पहाड़ी कौआ कह कर पुकारती है पर मैं उसे देवी समझता हूं। मुझे आपके घर का हर एक व्यक्ति याद आता है।" भैया ने जब चिट्ठी पढ़ कर सुनाई तो पूर्णी पहले बहुत ही प्रसन्न हुई, परन्तु फिर कुछ उदास सी हो गई और अपने कमरे में जाकर किवाड़ बन्द कर लिये। भैया और भाभी ने लाख पुकारा मगर वह कमरे से बाहर न निकली।

शाम की चाय लिए जब पूर्णी बैठक में आई तो हमारी भाभी ने उसे कहा—"तुम्हें क्या हो गया है पूर्णी, तुम तो गुजरू से बहुत घृणा करती थी। परन्तु हम देख रहे हैं जब से वह गया है तेरा रंग-रूप ही बदल गया है।"

पूर्णी ने क्षण भर भाभी की ओर कुछ ऐसी दृष्टि से देखा जैसे कह रही हो—"मैं बहुत ही झूठी हूं।"

दिन हवा के झोंके की तरह गुजरते गए। गुजरू को गए हुए दो महीने हो गए, किन्तु न तो वह स्वयं आया और न उसकी चिटठी ही आई। घर में भी अब कभी भूले से ही कोई उसकी बात छेड़ता, परन्तु पूर्णी प्रति दिन भैया से पूछती—"कोई चिट्ठी आई ?"

आखिर कोई अढ़ाई महीनों के पश्चात् गुजरू की चिट्ठी आई। भैया ने पढ़ कर सुनाया, लिखा था—"महाराज ! मैं बड़ी उलझन में फंस गया हूं। बन्ती को अपने घर तो ले आया, परन्तु गांव वालों ने मेरा नाक में दम कर दिया। मुझे कुछ सूझता नहीं कि मैं क्या करूं क्या न करूं। अगर मैं बन्ती से पूछता तो वह रो देती—"मेरा कोई नहीं, मैं क्या करूं ? मैं कहां जाऊं ?" यही सोच कर मेरा हृदय भी काँप उठता—और तब मैं पल भर के लिए पूर्णी को भूल गया और गांव के पण्डित को बुला कर बन्ती से विवाह कर लिया। पूर्णी मुझे लाख बुरा कहे। आते-आते उसे जो वचन दिया था वह उसे याद कर अवश्य कहेगी कि मैं दगाबाज और कपटी निकला, परन्तु उससे कहियेगा कि वह मुझे क्षमा कर दे—पूर्णी मुझे माफ कर देना। मैं सचमुच पहाड़ी कौआ ही हूं। अपने पहाड़ों से उड़ कर मैं तुम्हारे बागों में आया और जब तुम्हारे जीवन-वृक्ष पर बैठने के लिए पर तोल ही रहा था तो मेरे पहाड़ों ने मुझे वापस बुला लिया।" आखिर में लिखा था कि वह शीघ्र ही पचास रुपये भेज देगा।

पूर्णी चिट्ठी सुन कर, गुमसुम-सी अपने कमरे में चली गई और अन्दर से किवाड़ बन्द कर लिए। सारी रात उसके कमरे के द्वार बन्द रहे। मां जी, भैया और भाभी ने उसे लाख पुकारा। परन्तु सब हार गए। उस के कमरे के किवाड़ सारी रात बन्द रहे और अन्दर घोर अन्धेरा छाया रहा।

प्रातः भी मां जी ने सांकल खोलने को बार बार कहा, लाख आवाजें दीं परन्तु अन्दर से कोई उत्तर न मिला। रात को भी उसने कुछ नहीं खाया था और सुबह भी भूखी रही—मां जी द्वार तोड़ने की सोच ने लगीं।

हम सब भी यही सोच रहे थे कि दुःख से पागल हो कर कुछ कर न बैठे कि उस के किवाड़ खुले—एक ही रात में उसका रंग-रूप बदल गया था। उसका मुख किसी चिर-रोगी के मुख के समान मुरझा गया था और रो-रोकर उसकी आंखों में लाल डोरे उभर आये थे। वह कमरे से बाहर निकली, मुंडेर पर मां जी ने रात की बासी खिचड़ी फेंकी हुई थी, एक बड़ा सा पहाड़ी कौआ वह खिचड़ी खा रहा था। पूर्णी को न जाने क्या हुआ। उसने एक बड़ा-सा कंकर उठाया और खिचड़ी खाते हुए कौए को दे मारा—

कौआ 'कांएं, कांएं' करता हुआ उड गया।

● ● ●

उर्दू कहानी

बिन बरसे बादल

नूर शाह

प्रोफेसर नाथ एक अजीब सी उलझन में फंस गया। उसके दिल में रह रह कर एक ही ख्याल आता कि जब शादी ही नहीं करनी है तो फिर लड़की देखने, पसन्द या नापसन्द करने का प्रश्न ही कहां पैदा होता है ? लेकिन राय साहब हठधर्मी थे। वे ही उसकी यतीम जिन्दगी के सहारा थे। उनकी बात कैसे टालता ? आया था वह अपने किसी मित्र के विवाहोत्सव पर। मुश्किल से वह शोर समाप्त हुआ था और राय साहब के पास वह शांति का सांस लेने आया था, परन्तु एक दूसरा हंगामा खड़ा कर दिया गया। अपनी ज़िन्दगी के जो सिसकते क्षण वह अपने हारे हुए जीवन के साथ दफन कर चुका था फिर उसके सामने तड़पने, सिसकने के लिये आ गये।

रात काफी बीत चुकी थी, परन्तु नींद कहीं नहीं थी, शांति कहीं न थी। प्रोफेसर नाथ के अपने पैंतीस वर्ष के जीवन में केवल एक रात ऐसी आई थी जब उसकी जवानी प्रफुल्लित थी; जीवन में निश्चिन्तता थी। आंखों के सामने अपने प्रेम का एक उजियारा चित्र था। दिल की धड़कनों में यादों की गुनगुनाहट थी, और कल्पना में उज्ज्वल सपने। तब उसने सोचा था, अपनी जिन्दगी के बारे में—अपने विवाह के बारे में, अपने घरबार के बारे में, अपनी एक छोटी सी दुनिया के बारे में, अपनी बूढ़ी मां की अन्तिम अभिलाषा के बारे में, परन्तु उसके विचार एक सीमित परिधि में घूम सकते थे। वह एक छोटी-सी, गरीब-सी दुनिया का निवासी था। सिर पर बाप का साया भी न था। शिक्षा के साथ दो समय की रोटी के लिए भाग-दौड़ का चक्कर भी था। मां की बीमारी से वह उदास भी था। उसकी मां कुछ दिनों की मेहमान थी, और उसकी मेहमान मां की

अन्तिम अभिलाषा थी कि वह अपनी बहू को देख सके, उसका माथा चूमे और सदा के लिए सुख और शांति की नींद सो जाय। तब नाथ रात भर सोचता रहा था। और उसी सोच में डूबे हुए सुबह सवेरे ही उषा से मिलने चला गया। वह दोनों सहपाठी थे। दोनों एक दूसरे से प्रेम करते थे, परन्तु उषा एक बहुत बड़े घराने की लड़की थी, और नाथ एक गरीब नौजवान, परन्तु उनके प्रेम में यह अन्तर नहीं था। उसने ऐसा ही समझ रखा था, क्योंकि यदि प्रेम है तो ऊंच-नीच का प्रश्न ही पैदा नहीं होता। ऊंचाइयां प्रेम के समक्ष नत होती हैं, और गहराइयां उसके सामने उभरती हैं। मां की आशा पूरी करने का एक ही मार्ग था कि वह उषा से मिले, और जो बात कल होनी है वह आज ही हो जाय। इन्ही विचारों में डूबा वह उषा के घर पहुंचा। उषा सोत्साह उस से मिली।

नाथ ने अपने व्याकुल हृदय को सम्भाल कर अपना इरादा ज़ाहिर किया—

"उषा! तुम जानती हो कि मां अब कुछ ही दिनों की मेहमान है। उसकी कोई मनोकामना पूरी नहीं हुई। उस बेचारी की कोई इच्छा थी ही नहीं, रात भर मैंने उसे दु:खी देखा। रात भर रोती रही, वह चाहती है......

नाथ अपनी बात पूरी न कर सका।

उषा ने जैसे सब कुछ समझ लिया हो। फिर भी उसने दबी हुई जबान से पूछा—"क्या चाहती है वह?"

"यही कि अपनी बहू का मुंह देख ले, और तुम जानती हो मैंने ऐसा कभी सोचा भी नहीं। अधूरी शिक्षा, अधूरा जीवन बेरंग-सा! परन्तु मां का दु:ख मुझ से नहीं देखा जाता! इसलिये मैं चाहता हूं कि......"

"तो मां की शांति के लिये विवाह कर लो।" उषा ने बात काटते हुए कहा।

नाथ के मुख पर अपनी मां के जीवन की आशा उभरी—"मुझे विश्वास था कि तुम मेरा समर्थन करोगी।"

उषा ने अर्थपूर्ण दृष्टि से देखा। "तुमने कोई लड़की देख रखी है क्या? जो शीघ्र विवाह के लिये तैयार हो! जो तुम्हारे इस अधूरे जीवन को अपनाने के लिये तैयार हो। जो......"

उषा ने एक ही सांस में बहुत सी बातें कह दीं, एक ही सांस में गलत-फ़हमियां दूर कर दीं। अब उसके सामने उषा नहीं थी। एक बहुत बड़ी कोठी की चारदीवारी थी। जीवन का लहलहाता हुआ सरिस लॉन था, वहां सब कुछ था, परन्तु उषा नहीं थी, उषा का प्रेम नहीं था। वहां सब कुछ था लेकिन उसका अपना अस्तित्व न था, अपना जीवन न था। उषा ने एक ही क्षण में सब कुछ कह दिया था। वर्षों से जलते हुए

दीपों को एक फूंक से बुझा दिया था और कुछ कहे सुने बिना वह वहां से लौट आया था। अपनी मां की प्रतीक्षा भरी आंखों में झांका था, जिनमें आशायें सो चुकी थीं। केवल ममता की हुमक शेष थी, और फिर वह हुमक भी मिट गई, सदा के लिए

परन्तु वह ममता भरी आशा मिटी नहीं। नाथ के साथ रही। शिक्षा समाप्त हुई। कालेज में प्रोफ़ेसर हो गया। यौवन का उत्साह घटता गया। वह हुमक साथ रही। वही उसे सफल बनाती रही। और आज वह मनोविज्ञान का प्रोफ़ेसर था; अच्छा रहन-सहन था, मान था, सम्मान था। अब उसने पुस्तकों को ही अपना जीवन-साथी बना लिया था, उन्हें अपनी एकांत यात्रा का साथी बना लिया था। और इस प्रकार सारी दुनिया की शांति अपने आस-पास इकट्ठी कर ली थी। शादी-विवाह के नाम ही से उसे घृणा थी। यदि उसकी मां औरत न होती तो शायद वह औरत जाति ही से घृणा करता।

प्रोफ़ेसर नाथ की आंखों में नींद की जगह कुछ बीते पल ऐसे ही जम कर बैठ गए थे। उसने आंखें मूंद लीं। राय साहब के शब्द उसे साफ सुनाई दे रहे थे—"अच्छी लड़की है, अच्छा घराना है। वर्ष भर विलायत से रह कर आई है। देख लो उसे, हो सकता है तुम्हारी मनोवैज्ञानिक उलझनों का मारा मस्तिष्क सुलझ जाए। और अपने जीवन का आवश्यक कर्त्तव्य पूरा करने की सोच लो।" ये राय साहब के शब्द थे। उनका दिल रखने के लिये उसने लड़की से मिलने के लिये हां कर दी, परन्तु उस हां ने उसके जीवन का वह झरोखा खोल दिया, जहां से अतीत की परछाइयां उसे स्पष्ट दिखाई देती थीं। जिन पर दृष्टि जमाये उसे एक अजनबी-सी आकुलता का अनुभव होता रहा। रात इसी तरह व्याकुल गुजरी। जब वह सोया सबेरा हो चुका था। कालेज जाते समय राय साहब की छोटी लड़की विमल ने देखा, कमरे के किवाड़ बन्द थे। वह कहीं विवाह के डर से भाग ही न गया हो। इसी विचार से विमल किवाड़ खोल कर कमरे में चली गई। वह सो रहा था। और उस समय नौ भी बज चुके थे, उसने प्रोफ़ेसर के मुंह पर से लिहाफ़ उठाते हुए कहा।

"प्रोफ़ेसर भैया, वह लोग ठीक ग्यारह बजे आ रहे हैं, और तुम हो कि अभी तक सोये पड़े हो। नौ भी बज गए जल्दी उठो, कपड़े बदलो और यह प्रोफ़ेसरी का वेश बदल कर विद्यार्थी बन जाओ। फ़लसफ़ा मत झाड़ना। सीधी-सादी दुनियादारी की बातें करना। मैं कालेज चली।"

प्रोफ़ेसर ने जम्हाई लेते हुए पूछा, "तुम नहीं बैठोगी मेरे साथ ?"

"नहीं, तुम्हें लड़की को जानने का पूरा पूरा अवसर दिया जायेगा। मैं कालेज जा रही हूं। पिता जी दफ्तर जा रहे हैं। माता जी लड़की के मां-बाप को सम्भाल लेंगी और तुम लड़की की मनोवैज्ञानिक जाँच पड़ताल कर लेना, मैं चली।" विमल चली गई।

"प्रोफेसर नाथ ने नहा-धोकर लिबास बदला और चाय पीकर समाचार-पत्र पढ़ने लगा। इसी दौरान में उसने घड़ी को केवल एक बार देखा। पूरे ग्यारह बजे थे। उसके सारे शरीर में सिहरन-सी हुई। अपने अद्‌भुत से विचार को दबाने के लिए उस ने सिगरेट सुलगाई।

दरवाज़े पर एक लड़की खड़ी थी।

फ़ालसाई रंग की साड़ी में एक फ़ाख़्ताई रंग का चेहरा मुस्करा रहा था। बड़ी-बड़ी आंखें थीं। माथे पर एक लट लहरा रही थी। प्रोफेसर नाथ की दृष्टि धुन्धला गई, धुन्धला कर फिर चमकी। पैंतीस साल की आयु पीछे की ओर भागी। और पच्चीस वर्ष की अवस्था आ गई। लड़की की एक ही झलक ने उसमें वह अवस्था जगा दी। बहारों की एक नई सुगन्ध उठी और लहराई। लड़की सामने खड़ी मुस्करा रही थी। नए चांद की किरणें उस पर न्यौछावर थीं, वह शीघ्र ही कुर्सी पर से उठा।

"आइये, बैठिए, मैं आपको पहचान न सका।"

लड़की उसके समीप बैठ गई।

प्रोफेसर ने अपनी घबराहट छुपाने के लिए नया सिगरेट सुलगाया।

"मैं आपकी ही प्रतीक्षा कर रहा था। वास्तव में आपके ही बारे में विचारता था—यानी कि आपके विचार में मग्न था, देखिये ना......"

लड़की मुस्कराई। उसकी छोटी सी मुस्कराहट ने जैसे प्रोफेसर के दिल की धड़कनों को छू लिया।

"मुझे मालूम था कि आप मेरी प्रतीक्षा कर रहे होंगे। मैं जानती थी कि आप मुझे देख कर प्रसन्न होंगे।"

प्रोफेसर ने गम्भीर लहजे में कहा—"मैंने आपके बारे में जितना भी सोचा, जितना भी मैं सोच सका—अजीब सा ही सोचा। आपका चित्र, जो वास्तव में मैंने स्वयं ही बनाया था, उसमें आपकी सूरत वैसी नहीं है। सच तो यह है कि मैं लड़कियों के बारे में, शादी-ब्याह के बारे में अपने अलग ही विचार रखता हूं, और वह विचार एक विशेष ढंग में ढल चुके हैं। परन्तु आज मैंने महसूस किया, आपको देख कर इस परिणाम पर पहुंचा कि मुझे ऐसा कभी नहीं सोचना चाहिए। यदि मुझे अपने एकांत से प्रेम है तो आप औरत के रूप में वही एकांत ही तो हैं, यदि मुझे अपनी पुस्तकें पढ़ने का उन्माद है तो आप एक ऐसी पुस्तक हैं। यदि मुझे..."

लड़की ने लजा कर अपनी दृष्टि झुका ली।

"छोड़िए इन बातों को। इनके लिए तो सारा जीवन है। आपने मुझे पसन्द किया, मैंने आपको। एक कठिन बात आसान हो गई। किसी से कहना नहीं कि मैं आप से मिलने आई थी।"

"क्या आपके घर वाले साथ नहीं ?"

"नहीं, मैं अकेली ही आई हूं। अच्छा मुझे आज्ञा दीजिए।"

प्रोफेसर मौन खड़ा रहा।

लड़की ने जाते हुए धीमी आवाज़ से पूछा—"आप शीघ्र तो नहीं जा रहे ?"

प्रोफेसर ने अपनी कांपती हुई आवाज़ में उत्तर दिया, "कल चला जाऊंगा। अब मुझे और किसी से नहीं मिलना, किसी से कुछ नहीं कहना-सुनना, अब मैं आऊंगा केवल आपको लेने......"

लड़की चली गई।

प्रोफेसर का सिर चकराया। पच्चीस वर्ष की आयु आगे की ओर भागी। भाग कर फिर पैंतीस वर्ष की अवस्था में ढल गई। सारा शरीर पसीने से सराबोर हो गया। यह क्या हुआ ? यह कैसा क्षण ? यह कैसी धड़कन थी ? शरीर में कौन सी नई आत्मा प्रविष्ट हो गई ? यह कैसी लड़की थी जिसे देखते ही सदियों पुराने विचार मिट गए। यह कैसी गुनगुनाहट थी जिसने पुरानी राहों के निशान धुन्धला दिये, और एक नई डगर पर अपने सांसों की जोत जगा दी ? उनके विचारों का क्रम टूट गया। राय साहब की पत्नी की आवाज़ गूंजी—

"बेटा उन लोगों का टेलीफोन आया है कि वह आज नहीं आ रहे। लड़की के मामा को बाहर से आना था, वह नहीं आया। अब परसों शाम को आयेंगे।"

प्रोफेसर चुप रहा। जैसे वह पहले ही से जानता था।

शाम को चाय की मेज़ पर बैठ कर सब एक दूसरे का मुंह देख रहे थे। प्रोफेसर के फैसले पर सब को विस्मय हुआ। उसने राय साहब से कह दिया था कि मैं लड़की को देखना नहीं चाहता। लड़की के माता पिता और सम्बन्धियों से मिलना नहीं चाहता। मैं कल वापस जा रहा हूं। परसों वे लोग आयें तो बात पक्की कर दें, मैं विवाह के लिए तैयार हूं।

राय साहब मौन रहे, राय साहब की पत्नी मौन रही। परन्तु बिमल के मुंह से चीख निकल गई। उसने समझ लिया प्रोफेसर भैया पहले मुझ से मजाक करता रहा,

अब दूसरों से भी मज़ाक की ठान ली। बात सब के लिए प्रसन्नता की थी परन्तु सब हैरान थे।

शाम को जब टहलने गए तो बिमल ने बात छेड़ी—"भैया, एक बात समझ में नहीं आ रही। जो व्यक्ति लड़कियों के नाम से घृणा करता हो, जो उनसे मिलना पसन्द न करता हो। वह बिना देखे ही विवाह के लिए राजी हो जाए, पहेली ही है। कहीं पिता जी के दबाव से ऐसा फैसला तो नहीं किया? शादी-ब्याह का मामला है। एक लड़की के जीवन की बात है। मेरी मानो तो लड़की से अवश्य मिल लो।"

प्रोफेसर ने उत्तर दिया, "हो सकता है लड़की को मैंने देख लिया हो।"

बिमल हंसने लगी।

"सुबह सवेरे स्वप्नों में देखा या पुस्तकों में?"

"कुछ समझो, परन्तु मैंने फैसला सोच समझ कर, देखभाल कर किया है।"

"अच्छा परसों तक ठहर जाओ।"

"इसकी मैं कोई आवश्यकता नहीं समझता। मैंने अपना फैसला सुना दिया। और बातें तुम्हीं लोगों को तय करनी हैं, मेरी क्या आवश्यकता है। जब मुझे बुलाओगे तो सेहरा बांधे चला आऊँगा।"

"कालेज के मनोवैज्ञानिक वातावरण में जाकर अपना फैसला बदल दिया तो?"

"जब फैसला ही कर लिया तो अटल समझो!"

दोनों दूर तक सैर करते निकल गए। इस के बाद कोई बात नहीं हुई। बिमल ने लड़की नहीं देखी थी। उसके बारे में केवल सुना था। उसने यह परिणाम निकाल लिया कि प्रोफेसर लड़की की विलायती शिक्षा से प्रभावित हो गया। वह आज तक किसी ऐसी ही लड़की की खोज में था, जो हिन्दुस्तानी हो, परन्तु पश्चिमी रंग में रंगी हुई, प्रोफेसर ने यह सब कुछ ढोंग रचाया था, वह कपटी है। वापसी पर बिमल ने अपने घर वालों को भी अपने उद्‌गार बता दिये। वे सब खामोश रहे।

प्रोफेसर नाथ ने अपने जीवन की एक शान्तिपूर्ण रात बिताई। ऐसी रात जिस में प्रेयसी का सौंदर्य, विचारों की जीवनप्रद अंगड़ाइयां होती हैं, नए सफर और नई मंजिल के गीत होते हैं। वह गीतों भरी रात प्रोफेसर के जीवन में नई सी थी। उसने अनुभव किया जैसे आज तक वह एक ऐसा अन्धेरा था—खण्डहरों का अन्धेरा—जिस में चांद कभी न चमका था, चांदनी कभी न थिरकी थी।

सवेरे वह जल्दी उठा। अपना सामान सम्भाला, लिबास बदला और कुर्सी में धस

कर समाचार-पत्र पढ़ने लगा। दस बजे की गाड़ी से लौट जाना चाहता था और फिर......और फिर एक दिन......एक दिन......

"नमस्ते !"

मद्धिम-सी आवाज़ थी जैसे पायल झनकी हो।

उसने समाचार-पत्र से दृष्टि उठाई। वह लड़की फिर उसे मिलने चली आई थी। वही फालसाई रंग की साड़ी में, फाख्ताई रंग का चेहरा, बड़ी-बड़ी आंखें, माथे पर लहराती हुई लट। एक चमकता हुआ रूप था, लेकिन अब भी प्रोफेसर नाथ की दृष्टि न धुन्धलाई, पैंतीस वर्ष की आयु पीछे की ओर भाग पच्चीस वर्ष की आयु में परिवर्तित न हुई। लड़की मुस्करा रही थी। मुस्कराते हुए लजा रही थी। उस पर नई शिक्षा का कोई प्रभाव नहीं था। वह एक अल्हड़ मासूम हिन्दुस्तानी लड़की थी, प्रोफेसर के होंठ मुस्कराये, फिर आंखें मुस्कराईं और बहुत प्रेम भरी आवाज़ में कहा, "आइये बैठिये !" लड़की उसके समीप ही बैठ गई। एक दृष्टि प्रोफेसर के सामान पर डाली।

"मैंने सोचा आप जाने की तैयारी कर रहे होंगे। देख आती हूं, यह सोच चली आई।"

प्रोफेसर का चेहरा खिल उठा।

"मेरा फैसला सुनकर सब चकित रह गये।"

"कैसा फैसला ?"

"यही कि मैं विवाह के लिए तैयार हूं।"

लड़की ने अपने होंठ काट लिये।

"उन्हें पता चल गया कि मैं यहां आई थी।" प्रोफेसर ने जोर से गर्दन हिलाई। "नहीं, मैंने कह दिया मैं लड़की को देखना नहीं चाहता, जैसी भी है मुझे पसन्द है।"

"आपने कह दिया !"

"हां, और क्या कहता ?

लड़की का फाख्ताई चेहरा फूल की तरह खिल गया। "देखिये, मैं असल में कहना चाहती थी......" बिमल बाहर से आवाजें लगाती आ रही थी, "प्रोफेसर भैया, पिता

जी पूछ रहे हैं......" दरवाजे पर पहुंच कर बिमल ठिठक गई। उसने किवाड़ का सहारा लेकर कहा, "कंवल, तुम यहां क्या कर रही हो ?"

लड़की सिमट गई।

प्रोफेसर ने बिमल की बात का उतर दिया, "मुझ से मिलने आई थी। कल मैंने अपने जाने के बारे में इन्हें बता दिया था। कल यह मुझ से मिलने आई थीं। मैंने इन से बातें करके ही शादी करने का फैसला किया था।"

बिमल पास पड़ी हुई कुर्सी पर बैठ गई, उसका सिर चकराने लगा था। प्रोफेसर ने विस्मित होकर पूछा, "तुम कुछ उखड़ी-उखड़ी सी दिखाई देती हो ?" बिमल सम्भलती हुई, लड़की से बोली, "कंवल, जाओ तुम्हारे पिता जी तुम्हें बुला रहे है।"

कंवल ने साड़ी सम्भाल कर दोनों हाथों से प्रोफेसर को नमस्ते की और बाहर चली गई। प्रोफेसर कुछ भी समझ न सका।

उसने बिमल के समीप बैठकर पूछा, "यह बात क्या हुई ?

बिमल ने सिर थामे बात आरम्भ की, "तुम ने इस लड़की को पसन्द किया ?"

प्रोफेसर ने हां में गर्दन हिलाई।

"लेकिन बात क्या है ?"

बिमल ने घबराई हुई आवाज़ में उत्तर दिया, "यह वह लड़की नहीं है। यह तो हमारे मुहल्ले की पगली कंवल है। मैट्रिक में पढ़ती थी। पागल हो गई। बाप डाक्टर है, सम्भाले हुए है। नहीं तो कब की मर गई होती। भैया, तुम ने पसन्द किया तो किस पगली को। फैसला भी किया तो......"

बिमल अजीब-सी आवाज़ में अजीब-सी बात सुना रही थी। परन्तु प्रोफेसर के कान बहरे हो चुके थे। उसे कुछ भी सुनाई न दे रहा था। वह अपनी बात सुना कर अन्दर चली गई, और वह कितनी ही देर चुपचाप बैठा रहा। समाचार पत्र पर दृष्टि डाली, किसी नए अनोखे समाचार को ढूँढता रहा, परन्तु वहां कोई नया समाचार नहीं था, वहां कोई शब्द न था, केवल कंवल थी जो मुस्करा कर उसे देख रही थी। उसने कंवल की पागल मुस्कराहट पर दृष्टि जमाए अपने दिल ही दिल में सोचा। मेरा फैसला जीवन के मौन क्षण भर की उपज है जो केवल एक बार आंखों के सामने उभरता है। उस क्षण के विचार, उस क्षण के फैसले कभी गलत नहीं होते।

हो सकता है कंवल पागल हो और यह भी हो सकता है कि कंवल दूसरों के लिए पागल हो। क्योंकि वह उन्हें पागल नज़र आती है। वह मुझे पागल नजर नहीं आई। न पहली मुलाकात में न दूसरी मुलाकात में और यह भी हो सकता है कि वह मुझे पागल नजर न आये। कंवल से विवाह का मेरा फैसला जीवन का अत्यावश्यक फैसला है, जो अटल रहेगा।

उसने कार में सामान रखवाया। सभी मौन दृष्टि से उसे देख रहे थे। कार में बैठने से पहले दबी जवान में उसने राय साहब से कहा, "आप डाक्टर साहब से बात पक्की कर लें, मैं कंवल से ही विवाह करूँगा। वह जिस अवस्था में भी है उसे अपनाऊँगा।"

विमल ने विचित्र दृष्टि से प्रोफेसर नाथ को देखा। वही पहला प्रोफेसर भैया था—मनोविज्ञान का ज्ञाता।

और वह लम्बे सांस लेती हुई पगली कंवल से मिलने चली गई।

● ● ●

पांच मुक्तक

१ शेरजंग गर्ग

धूलिकरण तुच्छ हैं कंचन को ग़लतफ़हमी है,
अश्रुकरण व्यर्थ पाहन को ग़लतफ़हमी है,
ग़ैर के रूप पर इतराने की आदत है इसे—
बस इसी दर्प से दर्पण को ग़लतफ़हमी है।

२

दिल से सौ सौ दुआयें देकर भी,
तुमने दिल को मगर पनाह न दी।
कितना तीखा मजाक है गोया,
रौशनी बख्श दी, निगाह न दी।

३

दर्द को जब कभी दुःखी देखा,
आँसुओं के क़रीब देखा है।
जितना ज्यादा हसीन सपना था,
उतना ज्यादा ग़रीब देखा है,

४

ग़ैर को अपना बनाने में समय लगता है,
प्यार का फ़र्ज़ निभाने में समय लगता है,
स्वप्न की गोद में सोना तो सहज है लेकिन
आंख तक नींद के आने में समय लगता है।

५

सत्य के खौलते समंदर में
सारे सपने डुबो चुका हूं मैं।
दिल में फिर दर्द क्यों है पहले सा
आखिरी बार रो चुका हूं मैं।

●

अपना-अपना सच

(रचनात्मक लेखकों का आत्म-कथ्य)

शशि शेखर

वे क्षण जिनमें हम जीवन को उसके तीव्रतम रूप में अनुभवते हैं, जीते हैं, मेरे निकट कविता के ही क्षण हैं। शेष जिन्दगी तो रोज़मर्रापन को बस ढकेलते जाने की लम्बी और अर्थहीन प्रक्रिया मात्र है। आत्मानुभूति के क्षणों में जिस सत्य का उन्मेष होता है वही, मेरी समझ में, कवि का सम्प्रेष्य है, सत्य है। दूसरों से उधार लिए सत्यों से कभी जीवन-दृष्टि नहीं बन सकती। अतः जो भी अनुभव, संवेदन, विचार जीवन दे उनके प्रति मन को सदा खुला रखना ही मेरा कवि अपना धर्म मानता है। फिर भी अनुभूति भले ही सौंदर्य की सोनेरंगी प्यास का रूप धारण करे या पाप, उबकाई कुण्ठा के स्तरों को छुए! इसे अपना दुर्भाग्य कहूं या क्या, ज़िन्दगी के अब तक के जो अनुभव मेरे हैं वे अधिकांश में घुटन के, टूटन के, आक्रोश के कड़ुवाहट के उबकाई के हैं।

एक अनुभूति जो अनेक बार, अनेक रूपों में मेरी कविता में उभरी है, किसी नामालूम अपराध के लिए कैद किए जाने की अनुभूति है। पर चूँकि इस कैद के सींखचे मेरे अपने बनाये नहीं हैं अतः उन्हें तोड़ कर मुक्त होने की तीव्र छटपटाहट भी मेरे कवि ने सदा अनुभव की है। किसी आध्यात्मिक या माया के कारागार की बात नहीं कर रहा हूं—बात उस यथार्थ की है जो मुझे चारों ओर से घेरे हुए है।

बचपन में एक कहानी सुनी थी कि कश्मीर कभी एक लम्बी लुभावनी झील था, सतीसर, जिस में सती नौकाविहार किया करती थीं। पर एक जलवासी दैत्य, जलोद्भव, के कारण वे बड़ी परेशान थीं। और ज़ाहिर है कि उनकी परेशानी से सभी देवता परेशान थे। अन्त में कश्यप ने एक स्थान पर पहाड़ को काटा और झील का पानी उसी रास्ते बाहर बह निकला। पानी के निकल जाने से जो भूखण्ड उभर आया उस पर मनुष्य निवास करने लगे। दैत्य जलोद्भव विवश हो कर किसी अज्ञात दिशा में भाग गया! पौराणिक कथा तो इतनी ही है पर लगता है कि घाटी का वह भयंकर दैत्य मरा नहीं, लौट आया और घाटी का, या कहूं कि गुफा का मुख एक बड़े सारे पत्थर से ढँक कर उसने यहाँ के वासियों को कैद कर डाला। कभी-कभी वह इस विशाल पत्थर को सरका कर कहीं चला जाता है और हमारे लिए गुहा एक सोनघाटी बन जाती है जिसमें चीड़वन हैं, फूल हैं, पहाड़ हैं, झीलें हैं, नदियाँ हैं, हरी घास है! पर यह सब घाटी के दैत्य के लौटने तक ही रहता है। थोड़ी देर की अनुपस्थिति के बाद वह लौटता ज़रूर है और तब ये चीड़वन, ये झीलें, ये फूल, ये झरने पुनः एक विशाल गुहा का रूप धारण कर लेते हैं और हम स्वतंत्र मनुष्य न रह कर प्रागैतिहासिक अंधेरों में कैद हो जाते हैं!

एक और अनुभूति, जो शायद एक पृथक अनुभूति न होकर पहली अनुभूति का ही एक दूसरा रूप है, मन को बार-बार सालती है। मुझे लगता है कि मैं बलात् अथवा भ्रमवश एक गलत परिवेश से बाँधा गया हूं, कि जिस दृश्य के बीच मुझे स्थापित किया गया है मैं उसका अंग नहीं हूं कि जहाँ मुझे उगना चाहिए था उस मिट्टी से अलग और बहुत दूर बोया गया बीज हूं मैं, जिसने अंकुराते ही यह अनुभव किया था कि जिस छोटे-से आकाश तले उसने आंखें खोली हैं वह उसका अपना नहीं है!

अपने परिवेश और अपने बीच का यह द्वन्द्व मुझमें एक तनाव की-सी स्थिति उत्पन्न करता है, आस-पास जो लिजलिजे मूल्य-मान और जो पंगु सत्य स्वीकृत हैं उनके प्रति घोर अस्वीकृति और असहमति का भाव जगाता है। और अस्वीकृति का यह भाव अकेलेपन की यातना को और भी तीव्र कर देता है। लगता है कि मैं निर्वासित हूं और यह लोग लोग नहीं हैं, ठण्डे अंधेरे हैं जो मेरे आस-पास से होकर गुज़रते हैं

लेकिन मुझे छूते हुए निकल जाते हैं। जन-द्वेषी नहीं हूं, पर भीड़ की बाढ़ से निज को असम्पृक्त रखने का प्रयत्न इसे अकेले रह जाने का एक अनिवार्य परिणाम बनकर मेरे सम्मुख आता है। इसे निस्संगता कहें या "आउट साइडर" होने की भावना, पर यह मेरे अस्तित्व-बोध का एक अंग बन चुकी है। यह निस्संगता बोध, अस्तित्व का यह संकट मेरी कविता में भी अनेक स्वरों में निकला है।

प्रतिबद्धता की आजकल बहुत चर्चा है पर ढहते मूल्यों के बीच प्रतिबद्धता की बात मेरे विचार में बेमानी है। सामाजिक दायित्व को वहन करने और नये-मानव के निर्माण में योग देने की बातें अच्छी बातें हैं पर अहम्वादी या व्यक्तिवादी कुछ भी मुझे कहा जाए मैं यह ईमानदारी से स्वीकारना चाहता हूं कि समूह के आतंक और उनके द्वारा अरोपित मूल्यों के प्रति मुझ में अवज्ञा और अस्वीकृति के अतिरिक्त और कोई भाव नही।

आक्रोश, हाँ आक्रोश भी मुझ में जागता है जब देखता हूं कि हज़ारों लोगों का भाग्य उन लोगों की मुट्ठी में बंद है जिनके लिए मानव व्यक्ति की गरिमा खिलवाड़ की वस्तु है। जिनके पास करने के लायक कोई बात नहीं वे सत्ता के बल पर अपनी बात की महत्ता स्थापित करने में तत्पर हैं। जी में आता है इस सारी व्यवस्था को झटके में तोड़ दूं जो मुमूर्षु आदर्शों के नाम पर व्यक्ति के स्वातंत्र्य का हरण करके, उमका विवेक छीनकर उसे एक चौखटे में बन्द कर देना चाहती है—वह चौखटा कितना ही खूबसूरत क्यों न हो! सोचता हूं कि आज के संसार की सब से बड़ी ट्रैजिडी यह है कि मीडियाक्रिटी के हाथ में नेतृत्व का झण्डा है।

अंत:संघर्ष दृष्टि देता है पर कवि को संघर्ष अनेक स्तरों पर करना पड़ता है। औरों की बात नहीं जानता, पर अपने बारे में ज़रूर कहना चाहता हूं कि इस मामले में मेरी स्थिति उस गोताखोर की-सी है जो मोती लाने के लिए अथाह समुद्र में कूद पड़ता है पर पाता है कि वह काली लहरों के नीचे छिपे ऑक्टोपस की आठ-आठ टांगों की भयंकर जकड़ में कसा जा चुका है! मोती छूट जाते हैं और उसका सारा बल, सारा श्रम, सारा समय ऑक्टोपस की घिनौनी टांगों की जकड़ से अपने को मुक्त करने में व्यय होता है।

आकाश के अनेक रूप देखे हैं पर एक मुक्त आकाश के नीचे रहने का सुख कभी

प्राप्त नहीं हुआ । जो थोड़ा सा आकाश मुझे मिला है उस पर प्रायः कोहरा और धुंआ ही छाये रहे हैं । इस अनुभूति ने मुझे तड़पाया तो है पर मेरी काव्य-परिधि को भी शायद सीमित कर दिया है ।

आज जिसे नया या आधुनिक बोध कहा जाता है उसके प्रति मेरा विशेष आग्रह है । यह नहीं कि आधुनिकता को फैशन के तौर पर ओढ़ कर चलता हूं पर यह ज़रूर कि अनुभव के जिस जलते बिन्दु पर आज का मनुष्य खड़ा है वही उसे दृष्टि और दिशा देगा—ऐसा मेरा विश्वास है । शेष सभी दिशायें धुंधली पड़ गई हैं, सभी रास्ते झूठे पड़ गये हैं !

आधुनिक कविता के साथ मेरा पहला परिचय अज्ञेय की कविताओं के माध्यम से हुआ इसके लिए मैं उनका चिर ऋणी हूं । डॉ० जगदीश गुप्त के शब्दों में वे नयी हिन्दी कविता के "शलाका पुरुष" हैं । हिन्दी में निस्संदेह अज्ञेय सुरुचि और प्रौढ़ता के पर्याय हैं । विदेशी कवियों में से नेरूदा, जिमिनेज़, वैलेजो, रिल्के, क्वासी मोदो तथा पाल इल्युआर मुझे विशेष प्रिय हैं ।

लिखता बहुत कम हूं, अधिकांश समय एक विचित्र तनाव और कड़ुवाहट में बीतता है जो एक उबकाई लाने वाली सभ्यता मुझ में उत्पन्न करती है ।

● ● ●

कहानी

दोराहा या चौराहा !

डॉ० अयूब 'प्रेमी'

दूसरी श्रेणी के डिब्बे में बड़ी भीड़ थी । जैसे-तैसे कुली ने ऊपर की बर्थ पर एक तरफ सामान रखा । मैं कंधे पर शेरवानी डाले हुए तलाश करती हुई नज़र चारों तरफ फैंकने लगा कि कहीं थोड़ी-सी जगह प्रमिला के बैठने के लिए मिल जाए । एक बैंच पर बैठे एक जोड़े से मेरी नज़र ने बात की । तभी पुरुष के फैल कर बैठने के अन्दाज़ ने जवाब दे दिया...जगह नहीं ।

—जी, जगह तो बहुत है, हां, अलबत्ता आपके दिल में जगह नहीं है ।

इस जवाब को पाकर वे क्रोध के साथ घूरने लगे । लेकिन उनकी देवी जी को दया हो आई । उन्होंने अपने पति को कोने में बिठा दिया और अपने पास प्रमिला को बैठने के लिए जगह दे दी । अब शुक्रिया अदा करने के लिए मेरी नज़र जैसे ही उस दया की देवी से मिली कि कंधे पर पड़ी हुई शेरवानी नीचे डिब्बे के फर्श पर गिर पड़ी । हाथ की किताब भी धूल चाटने लगी । मेरी इस बेहूदगी पर सारे डिब्बे ने कहकहा लगाया । प्रमिला ने फौरन शेरवानी को उठा कर अपनी गोदी में रख लिया और किताब की धूल झाड़ने लगी । वे पति महोदय अजीब-सी व्यंग्य भरी नज़रों से हम दोनों को देखते हुए मुस्करा रहे थे । उसी समय प्रमिला से देवी जी बातें करने लगीं......

—आप कहां जा रही हैं ? देवी जी ने पूछा ।

—श्रीनगर । प्रमिला ने जवाब दिया ।

—हम भी कश्मीर जा रहे हैं..... हनीमून मनाने के लिए। अभी कुछ दिन पहले ही हमारी शादी हुई है। आपके पति वहाँ क्या करते हैं?

—रेडियो स्टेशन में कलाकार हैं। प्रमिला ने जवाब दिया।

—मेरे पति तो बहुत बड़े रईस हैं। शिमला और मंसूरी में उनकी आलीशान कोठियां हैं। वहां तो जिन्दगी भर ऐश करना ही है, सोचा कि कश्मीर में ही हनीमून मनाया जाए।

मैंने देखा कि उनके पति महोदय जो कुछ देर पहले अपनी पत्नी पर झुंझला रहे थे अब बड़ी रोब की मुद्रा में संभलते हुए अकड़कर बैठ गए। उन्होंने उसी पोज़ में 'लाइफ' मैगज़ीन उठाई और बड़े मनोयोग के साथ पढ़ने लगे।

—यह कौन सी किताब आपके हाथ में है। देवीजी ने फिर सवालों में ही बातें शुरू कीं।

—कविता की पुस्तक है। प्रमिला ने जवाब दिया।

—मुझे कविता से उतनी ही चिढ़ है जितनी किसी कवि से। कवि लोग बिल्कुल मूर्ख होते हैं। सिर्फ कल्पना की बातें करते हैं। इन लोगों का कोई भरोसा नहीं। कब क्या कर बैठें। वैसे मैं भी बहुत पहले कवियों को स्वर्ग का फरिश्ता समझती थी। लेकिन समझदारी आयी तो मैंने उनको एक बुद्धू से ज्यादा अहमियत नहीं दी। इसीलिए मैंने अपनी शादी एक खिलाड़ी से की है। मेरे पति मिस्टर तपेश गाल्फ के बहुत मशहूर खिलाड़ी हैं।

मैंने देखा कि मिस्टर तपेश की आंखों में एक विशेष चमक आ गई थी। उनके चेहरे से रोब मानो टपक रहा हो। वे और तनकर अकड़ के साथ बैठ गए।

—हां बहन, माफ कीजिए, आपके पति कवि तो नहीं हैं?

—हां, वे मशहूर कवि हैं और कवि होना कोई गुनाह नहीं। वे मेरे लिए देवता हैं। मैं उनके बारे में कुछ भी कहा जाना बर्दाश्त नहीं कर सकती। प्रमिला के इस जवाब में स्वाभिमान और झुंझुलाहट साफ ज़ाहिर हो रही थी।

—बहन, मेरा मतलब तुम्हारी भावना पर चोट करना नहीं है। मैं तो भगवान से प्रार्थना करती हूं कि मेरी जैसी खुशियां सभी को मिलें। कोई भी भोली-भाली युवती कवि को अपना सकती है लेकिन उस पर विश्वास करना कैसी भयंकर बात है। वह किसी पर क्रोध करता है तो डर लगता है लेकिन जब ज्यादा प्यार करे तब तो और भी ज्यादा डर लगना चाहिए। दो दिलों के मधुर बन्धन से अपने दामन को बांधने के

बाद उसका प्यार दहकता हुआ अंगारा बन जाता है। सच-सच बताना क्या तुमने कभी ऐसा डर महसूस किया है ?

—नहीं, ऐसी तो कोई बात नहीं। मुझे कभी भी उनसे डर नहीं लगा। प्रमिला ने सरल भाव से जवाब दिया।

—हो सकता है क्योंकि सभी के विचारों और भावों की दिशाएं समान नहीं हुआ करतीं। मेरे पति तो स्पष्ट दृष्टिकोण के कायल हैं। हम दोनों के विचार बिल्कुल एक जैसे हैं। ऐसा संयोग बहुत कम देखने में मिलता है। तुम शायद सादा जीवन की कायल हो। लेकिन मैं तो इस जीवन को जितने सुख के साथ भोग सकूं तो अपना सौभाग्य समझूं। देखो यह नेकलेस मेरे पति ने दस हजार में बनवाया है। ज़ेवरों के दस सैट हैं। सुबह से शाम तक कई बार कपड़े बदलती हूं। हम दोनों के दर्जनों दोस्त हैं। उनके साथ सिनेमा देखती हूँ। सैर-सपाटे और पिकनिक मनाने के प्रोगाम बना करते हैं। क्लबों में महफ़िलें सजती हैं। अरे! तुम्हारे गले में सिर्फ बेला के फूलों का हार है ? कहाँ से खरीदा ? मैंने देखा मिस्टर तपेश के चेहरे पर व्यंग्य भरी मुस्कान नाच रही थी।

—खरीदा कहीं से नहीं। प्रमिला ने मुफलिसी के स्वर में कहा।

—तो क्या तुमने खुद गूंथा है। बड़ा अच्छा हार बनाती हो।

—नहीं मैंने नहीं बनाया।

—तो फिर किस ने ?

—मेरे पति ने।

—सच ?

—हां।

—क्या मैं इसे देख सकती हूं।

—लीजिए।

—बड़ा सुन्दर है। क्या सुबह के चार बजे इसे गुंथा गया है ?

—जी, लेकिन आप कैसे जानती हैं ?

—यूं ही, क्योंकि ऐसे हार को गूंथने का यही समय होता है। जब तुम अंगड़ाई लेकर करवटें बदलती होगी तब सहसा ही इसका महकता हुआ शीतल स्पर्श तुम्हें जगा देता होगा। आपके पति का कविता लिखने का क्या समय होता है ?

—यही लगभग एक बजे रात का। मैं तो अक्सर सो जाया करती हूं। कभी बीच में आंख खुलती है तो ये टेबल लैम्प के प्रकाश में गुनगुनाते दिखाई देते हैं। मैं पूछती हूं......क्या चोरी कर रहे हो ?

—तो क्या जवाब देते हैं। बड़ी बेसब्री के साथ देवी जी ने पूछा।

—यही कि मेरे रूप की चोरी और फिर मेरे बालों से खेलने लगते हैं। बड़े चालाक हैं। थोड़ी देर में फिर सुला देते हैं। फिर तभी जागती हूं जब बेला के इस हार से सुबह महक जाती है।

—कभी इनके भावों और विचारों में किसी ऐसे तूफान को मचलते हुए देखा है है जिस पर ये अधिकार न कर पाते हों।

—हां, कई बार! मैं चौंक गई हूं। और मैंने जब पूछा तो जवाब मिला कि दु:स्वप्न देखा था।

—बस, यही तो चोरी है उनकी, अच्छा सपने की हालत में किसी लड़की का नाम बड़बड़ाते सुना है?

—नहीं, कभी नहीं। वे इन चीज़ों से बहुत ऊँचे उठे हुए हैं। प्रमिला ने हंसते हुए जवाब दिया।

—तब बहुत अच्छा है। क्या आपके पति ने दिल्ली में शिक्षा पाई है?

—जी हां।

—अंग्रेज़ी साहित्य में फर्स्ट डिविजन में पास हुए थे।

—जी!

—क्लास में बाईं ओर की बैंच पर बैठा केरते थे?

—मुझे नहीं मालूम।

—अच्छा, लालकिले में हिन्दी-कवि-सम्मेलन में जो भाग लिया था?

—लिया होगा।

—हां लिया था और वहां इनकी कविता बहुत पसंद की गई थी। कवि-सम्मेलन के बाद लड़कियों ने घेर लिया था इन्हें। बेचारी रीता जी भीड़ को चीर कर दौड़ी थीं। क्या ये उन लड़कियों की भीड़ को चीर कर रीता तक नहीं आ सकते थे? दांत भींच कर अन्दर से सुलगती रह गई थी बेचारी। क्या तुम रीता माथुर को जानती हो?

—कौन रीता? प्रमिला ने क्रोध के स्वर में कहा।

—रीता जिससे ये प्यार करते थे। तुम से भी ज्यादा।

—यह झूठ है। उन्होंने कभी भी मेरे अलावा किसी से प्यार नहीं किया। मुझे मेरा हार वापिस कीजिए। आवेश के साथ प्रमिला चीख पड़ी।

—नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। इस पर मेरा अधिकार है। मैंने देखा कि दुगने आवेश में रीता चीख रही थी।

—रीता यह क्या नानसेंस हैं ? तपेश ने तिलमिलाते हुए कहा।

—मिस्टर तपेश ! आप खामोश रहिए। मैं काबू से बाहर हूं। चलती हुई गाड़ी से कूद पड़ूंगी।

सहसा गाड़ी जालन्धर स्टेशन पर रुकी। मैं हक्का-बक्का देख रहा था। रीता ने मेरे सामने आकर उस हार के टुकड़े-टुकड़े कर दिये। फिर तपेश से रोते हुए कहा—डीयर तपेश, मुझे माफ कर दो। अब हम कश्मीर नहीं जायेंगे। शिमला चलेंगे। वह सामान प्लेट-फार्म पर फैंकने लगी। तपेश झुंझलाता हुआ उसका हाथ पकड़े हुए प्लेटफार्म पर उतर गया। मुझे जाने क्या हो गया। मैं प्रमिला का बिना ध्यान किये हुए खिड़की की ओर बढ़ गया। गाड़ी चल पड़ी थी। खिड़की में खड़ा हुआ मुझे देखकर रीता चिल्ला रही थी......डीयर अरुण ! जंजीर खींचो मैं भी कश्मीर चलूंगी। मुझे ऐसा लगा कि मैं एक दुराहे पर खड़ा मुसाफिर हूं और जब होश आया तो मालूम हुआ कि मैं चौराहे पर खड़ा हूं जहां बहुत पूर्व ही अचेत हो गया था।

● ● ●

मैं वही, तुम वह नहीं,

राजेश्वर प्रसाद सिंह

भ्रांति का परिवेश मोहक,
मदिरतम संस्मृति तुम्हारी,
ज्वार-सी उठ छा रही,
मन-प्राण पर संस्मृति तुम्हारी।

मैं वही, तुम वह नहीं,
यह दर्द जिसकी दवा हो तुम,
सोचता हूं, पास ही तुम,
किन्तु कितनी दूर हो तुम !

दर्द का उद्रेक, मोहाच्छन्न,
मानस, प्राण, व्याकुल,
विगत वैभव-वीथियों में,
फिर रहा मैं भ्रांत आकुल।

रिक्त घट, तृष्णा अमित,
मधुमास की परि कल्पना भी,
तृप्ति की आशा वृथा,
पर तृप्ति ही की चाहना भी !

छवि तुम्हारी नयन मेरे,
युग-युगों की सतत अनुरक्ति,
किन्तु यह व्यवधान, यह
विद्रुप, मानो विफल अनुरक्ति।

तुम उधर हो, मैं इधर हूं,
बीच में व्यवधान क्यों है ?
अनवरत आराधना का यह,
अप्रिय प्रतिदान क्यों है ?

लोक गीतों की वैभवस्थली : पंजाब भूमि

—मनसाराम शर्मा चंचल

गीतों का मनुष्य की भावनाओं और स्पन्दनों से गहरा सम्बन्ध है। जब से मानव अस्तित्व में आया या उस ने स्वर पाया, संभवतः उसने उलटे टेढे स्वरों का आरोहावरोहण आरम्भ कर दिया होगा, क्योंकि भावुकता एक आवेग है जो कि शारीरिक प्रक्रिया का एक कारण होती है और इसी भावुकता के आवेगों से आक्रांत होने से हमारे प्रत्येक अवयव में गतिशीलता आ जाती है और मानव के स्वर फूट पड़ते हैं, जिनमें बिना ज्ञान के भी लय और ताल होता है, आरोहावरोह होता है और इनमें कम्प, गुरुता, चांचल्य, संवृत्तात्मकता, विवृति आदि विभिन्न रूपों में शब्दों के अंश आ मिलते हैं, जो बाद में संगीत और गीत का रूप धारण कर लेते हैं।

भावनाएं, उद्‌गार और उद्वेग आदि काल से मानव-हृदय से प्रस्फुटित होते रहे और ये विभिन्न शब्दों के माध्यम से प्रकटित होते रहे। यही भाव हमारे आदि साहित्य में प्रबंध व प्रस्फुट रूप प्रकट हुए हैं। यह भावुकता कभी-कभी इतनी प्रबल हो उठती है कि उसको अन्तर में रोके रखना असंभव हो जाता है और ये भाव गीत के रूप में प्रस्फुटित हो जाते हैं। इसका उदाहरण महर्षि बाल्मीकि की वह छन्द-रचना है, जब कि काम-मोहित क्रौंच युगल में से एक को मरते देख कर महर्षि का कोमल हृदय तड़प उठा था और एक छन्द की रचना हो गई थी। इसी प्रकार विभिन्न जातियों और जन-समुदाय में व्यक्तिगत या सामूहिक रूप से कई बार ऐसी

कितनी ही रचनाएं भी प्रस्फुटित हुई होंगी। इनमें जितना आवेग होगा, गीत में भी उतनी ही मार्मिकता आएगी।

यह साहित्य समय के साथ-साथ आगे बढ़ता है और लोक-मानस के दर्पण का रूप धारण कर लेता है। यहां तक कि कई बार तो यह "दैवी वाक्य" बन जाता है, जिस के रचयिता, स्वर-संधाता तथा सम्पादक आदि का कुछ अता पता नहीं होता और वह कण्ठ से कण्ठ तक पहुंचते अपनी परम्परा बना लेता है एवं सामाजिक जीवन का एक भाग बन जाता है। इसे हम "भूमि-पुत्र" या निर्वैयक्तिक भी कह सकते हैं और सामान्य भाषा में इसे हम "लोक-गीत" कहते हैं।

लोक गीत सामान्य गीतों से पृथक् होते हैं। इनका अपना ज्ञान-कोष विशाल होता है। ये सार्वजनिक होते हैं और इनके रचयिता के बारे में कोई नहीं जानता कि इनको किसने लिखा, किसने इन्हें प्रचलित किया या स्वर प्रदान किया। इनकी सरसता, और गेयता इतनी सजीव होती है कि आज की सुसंस्कृत, अलंकृत और कलामय कविता की उड़ानों के बावजूद इनकी लोकप्रियता में कमी नहीं आई और इनका महत्व निरन्तर बना हुआ है।

लोक गीत संसार के प्रत्येक भाग में कम या अधिक रूप से पाये जाते हैं और लोगों में इनको लोकप्रियता भी है। त्योहारों, उत्सवों, और कभी-कभी यों ही मनस्तुष्टि के लिए लोग इन्हें अपनाते रहते हैं। इसलिए विभिन्न अवसरों से सम्बन्ध हो जाने के कारण इनको भिन्न भिन्न कोटियों में बांटा जा सकता है। जैसे कि विवाह, जन्म, त्योहार, वीरगाथा आदि के गीत।

लोक गीतों की दृष्टि से पंजाब बड़ा सौभाग्यशाली है। यहां के लोक-गीत इतने सरस, हृदयहारी और सजीव हैं कि आज भी जनमानस पर उनकी उतनी ही गहरी छाप है और उनकी लोकप्रियता भी कम नहीं हो पाई। इनका शब्द विन्यास इनकी विशेषता है और ये हर ऋतु, समय और काल में गाए जा सकते हैं। लोक गीतों से पंजाब की सारी धरती महकती और मुस्काती दृष्टिगत होती हैं। इन में सरसता, मधुरता, लय, ताल इस प्रकार के हैं, कि बिना लिपि-बद्ध किए ही हज़ारों या सैंकड़ों वर्षों से ये वाणि परम्परा से एक धरोहर के रूप में हम तक आ पहुँचे हैं।

पंजाब के लोक-गीतों में पंजाब का जीवन प्रतिबिम्बित होता है, और वहां की संस्कृति और सभ्यता का दिग्दर्शन होता है। इन गीतों में पंजाब का उभरता यौवन, महकता सौंदर्य, भोला शैशव, नवोढ़ाओं का मान और विरहिणियों की बेबसी और झुंझलाहट प्रतिबिम्बित होती है। पंजाब की रंगीन शाम, सुवर्णिम प्रभात, तपती

दुपहरी, बरसता सावन लहलहाती सरसों, ठिठुरता शरद् और मुस्कराती बयार जहां इन्हें लोरियां देते हैं. वहां पंजाब के लोक-जीवन का सारा वातावरण चलचित्र की भांति हमारी आंखों के सामने नाच उठता है। इन लोक गीतों में ऊँची उड़ानें भी हैं और रंगीन दुनिया के सुनहले सपने भी हैं, जो कि पंजाब की अल्हड़ बालाएँ अपने विवाह से पूर्व देखती हैं। प्रेम और वीरता के कुछ किस्से या आख्यान हैं, जिनमें पंजाब का अतीत छिपा है। पंजाब के लोक गीतों में सास-बहू की नोक-झोंक विशेष कोटि तक जा पहुँची है। सासों का बहुओं को सताना, उनके भाइयों और कुल को बुरा भला कहना और अपने पुत्र को बहकाना आदि और इस व्यवहार से बहू की वेदना को इस साहित्य में बड़े अनूठे ढंग से वर्णित किया गया है।

पंजाब की अविवाहिता अल्हड़ बालाएं 'त्रिंजन' के अलावा कभी-कभी हसती खेलती कुंओं, तालाबों या नदी तटों पर अपने भविष्य के संसार को अपने गुलाबी होंठों पर लाती हैं या किसी नव-विवाहिता से उसकी ससुराल की बातें पूछती हैं तो उन्हें किसी भी पुरुष की विद्यमानता उस समय अखरती है और शायद गांव के मनचले नवयुवक उनकी बातें चोरी छिपे सुनना चाहते हैं. तब वे खीझ कर कह उठती हैं।

ऐ बोल भैनां दे,

ना सुन बेशर्मा वीरा

ऐसे ही गायन और नृत्य स्त्रियां उस समय भी गाती हैं, जब कि सभी पुरुष बारात में चले जाते हैं। उस समय वे इतनी आत्म-विभोर हो उठती हैं कि उन्हें सहज-सुलभ लज्जा और झिझक का तनिक आभास नहीं रहता और उनकी स्वछन्दता अश्लीलता के छोर तक को छू जाती है।

यदि हम पंजाब के गीतों को श्रेणीबद्ध करना चाहें तो हम उन्हें निम्न वर्गों में बांध सकते हैं—

पुत्रजन्म, लोरियां, बाल-क्रीड़ा, प्रेमोपाख्यान, पानी भरना, कृषि, सगाई और विवाह, सास-बहू. देवर-भावज, ऋतुगत त्योहार, औसियां और बिछुड़े प्रेमी का मिलन, प्रेयसी या प्रेमी का रूठना, भाइयों को मुन्शी व पटवारी बनाने की मनौतियां, भाई के घर आने पर उल्लास आदि। कुछ और स्फुट प्रकार के गीत भी हैं, जिन्हें हम किसी कोटि-विशेष में बांध नहीं सकते। ये गीत अधिकांश रूप से यौवन और बचपन के इर्द-गिर्द घूमते हैं। कहीं कहीं वार्धक्य पर भी छींटे कसे गए हैं।

ये गीत कब लिखे गए और कब प्रचलित हुए इनका हमारे पास कोई प्रमाण नहीं है। हो सकता है कि इनकी आयु हज़ार बरस तक हो, क्योंकि शेख-फरीद की भाषा भी आज की पंजाबी भाषा से विशेष अन्तर नहीं रखती। इनमें

से कुछ तो मुगलों, सिखों और अंग्रेज़ों के शासन काल के प्रतीत होते हैं, जिन पर तत्कालीन वातावरण की स्पष्ट छाप दिखाई देती है। इस बारे में श्री एम० एस० रणधावा ने लिखा है, "यदि लोक गीत में रेल, स्कूल फिरंगी का वर्णन हो तो गीत पुराना नहीं हो सकता, यदि रेडियो, कांग्रेस आदि का वर्णन हो तो वह बिल्कुल नया होगा।" परन्तु ये शब्द आम गीतों में तो आते नहीं। हमारे साहित्य का केन्द्र बिन्दु आदि काल से प्रेम और विरह रहा है, जो हज़ारों वर्ष पूर्व भी था और आज भी है। ऐसी स्थिति में किसी गीत की नवीनता और पुरातनता का पता लगाना अति कठिन है।

नए प्रभाव ने इन गीतों को किसी सीमा तक आवृत कर लिया है। आज की प्रगतिशीलता की इस दौड़ में हम इस निधि को कहां तक संजोकर रख सकेंगे। इस बारे में कुछ नहीं कहा जा सकता। इस लेख में पंजाब के लोक गीतों की एक झलक दिखाना समीचीन होगा, यद्यपि इस साहित्य के इतने भारी भण्डार में से प्रत्येक विधा का दिग्दर्शन कम कठिन काम नहीं।

माहिया

माहिया पंजाब का लोकप्रिय विरह गीत है या गीतिका-शैली है। यद्यपि पंजाब के विभिन्न प्रदेशों में इसके विभिन्न स्वर हैं, तदपि इस की लोकप्रियता हर जगह है। "माहिया" पंजाबी लोक गीतों में प्रेमी का प्रतीक है और "बालो" प्रेयसी की। गीतावली में जीवन के प्रत्येक अंग को स्पर्श किया गया होता है। इसे प्रायः पुरुष और महिलाएं दोनों गाते हैं। इस के पद के दो भाग होते हैं। पहला भाग निरर्थक होता है। दूसरा उसकी तुक को पूरा करता है और उस में कथनीय बात होती है। माहिया में अल्हड़ यौवनाओं और उनके मनचले प्रेमियों के मनोभावों को सरल और सीधी-सादी भाषा में व्यक्त किया गया होता है। इस गीत का एक-एक बोल हृदय-तारों से टकरा कर जीवन का प्रतीक बन जाता है। नीचे के पद में प्रेयसी प्रेमी से जीवन भर प्रेम निवाहने की प्रार्थना करती है :

छींगा ने बोड़ दियां।
अध विच न छड्डीं,
असीं लाइयां ने तोड़ दियां।।

एक और पद में अपने माहिए के प्रति निष्ठा की पराकाष्ठा देखिए :

खूहे ते पानी भरिए।
सद्द पटवारी नूं,
दिल माहिए दे नां करिए।

अब जब कि सरकार व सामाजिक संस्थाओं की ओर से लोक साहित्य को प्रोत्साहन मिल रहा है, माहिया भी कई करवटें ले रहा है और समारोहों, लोक गीत सम्मेलनों में इस को काफी लोकप्रियता हासिल हो चुकी है। कई बार तो इसके दिलचस्प मुकाबिले भी होते हैं, जिस में पक्षी-प्रतिपक्षी एक दूसरे पर चोटें करते हैं। दरअसल यह पंजाब का सदा बहार लोक गीत है।

त्रिजंन

पंजाब में कातना और बुनना आदि काल से प्रचलित है। कहा जाता है कि एक लड़की इस लिए विवाह से वंचित रह गई थी, क्योंकि वह दहेज के लिए कपड़ा न कात सकी थी। पंजाब में कपड़ा कातना और बुनना कन्या के विशेष गुणों में से एक माना जाता था। त्रिजंन में लड़कियां इकट्ठे बैठ कर चर्खा कातती और गीत गाती हैं। त्रिजंन को "चिड़ी चड़ूंगा" भी कहा जाता है। रात भर दीपक जला कर सूत के मूड़े पर मूड़े उतारे जाते हैं। जब रात में गीत के स्वर और लय के साथ चर्खे गूंजते हैं तो एक समां बंध जाता है और फिर पूर्णिमा का चन्द्रमा हो तो कहना ही क्या ?

त्रिजंन के गीत विप्रलम्भ परक होते हैं। उन्हें यह भय रहता है कि वे दुबारा इकट्ठी होंगी भी या नहीं, क्योंकि दूसरी बार मिलने से पूर्व किसी न किसी का विवाह हो जाता है इसी लिए कहावत है :—

पूर बेड़ी दा ते त्रिजंन दी सखियां,
सबब नाल होन कट्ठियां ।

इन गीतों में जीवन की बहुरूपता होती है । और जीवन की असह्य विरह वेदना होती है, जो कि सहज ही जिह्वा पर आ जाती है।

गुड्डी अद्ध समान चढ़ा के,
डोरां कटियां माही ने ।

सास के प्रति बहू की शिकायत देखिये—

आप सस्सू पलंगे ते लेटदी,
हाय पलंगे ते लेटदी ।
सानूं मारदी, हाय नी सानू,
मारदी, चक्की वल्ल सैनतां ।

कहीं कहीं पति के द्वारा की गई सख्तियों की अभिव्यक्ति भी होती है—

अद्धी रातीं मार पई, हाय मार पई ।
भन्न छड़ियां, हाय नी भन्न छड़िडयां,
मलूक जेहियां हड्डियां ।

लोरियां

लोरियां समस्त भारत में समान-रूपेण प्रसिद्ध हैं; जो कि बच्चों को मीठे मीठे गीत सुना कर उन्हें सुलाने के समय गाई जाती हैं। इन में कई प्रकार की बातें कही होती हैं और अधिकतया बच्चों की दीर्घायु की प्रार्थनाएं होती है आशीषें होती हैं। तनिक देखिए :

अल्हड़ बल्हढ़ बावेदा,
बाबा कनक लियावेगा ।
बाबी बैठी छट्टे गी ।
मां पूणियां बट्टे गी ।
बाबी मन्न पकावेगी,
बाबा बैठा खावेगा ।

इस से भी अधिक भाव लिए निम्नलिखित लोरी है :

दुर दुर कुत्तेया, जंगल सुत्तेया
जगल पई लड़ाई, जीवे मुड़े दी ताई
लाल नूं लोरी देवां । सौं जा मेरे पुत्तेया
नानकेयां नूं जावांगे ।
झगा चुन्नी लियावांगे ।
नानी दित्ता ध्यो ।
जीवे लाल दा प्यो ।

लोहड़ी

लोहड़ी पंजाब का प्रसिद्ध त्योहार है। इसे पौष मास के अन्तिम दिन बड़ी धूमधाम से मनाया जाता है और पूरा पौष मास बच्चे घरों और दुकानों पर लोहड़ी गाते फिरते हैं। नीचे इन विशिष्ट गीतों में से एक उदाहरण देखिए।

तिल चौलिए नी, गिग्गा मौलिए नी ।
गिग्गा जाम्मिया नी, गुड़ बंडिया नी ।
गुडदीयां रोड़िया नी, भरावां दी जोडियां नी
गिग्गा आप जीवेगा । धुमाई बाप जीवेगा ।
सुहरा साक जीवेगा, तिल चौलिए नी ।

विवाह गीत

लोक गीतों का उपयुक्त समय, उत्सव, त्योहार, और विवाह आदि होते हैं । विवाह पर चूंकि बहुत सी स्त्रियाँ इकट्ठी होती हैं, अत: गीतों का बहुत समां बंधता है । विवाह से पूर्व घोड़ियां व सुहाग गाए जाते हैं । विवाह के दौरान भी विभिन्न समयों पर कई प्रकार के गीत गाए जाते हैं । इन में से एक-दो को नीचे दिए जा रहा है—

बाबल वर लोड़िए

बेटी चनन दे ओहले क्यों खड़ी ।
में तां खड़ी सां बावल जी दे बार ।
बावल वर लोड़िए ।
बेटी किहो जिहा वर लोड़िए ।
नी जाइये किहा जिहा वर लोड़िए ।
बावल जियां तारियां विच्चां चन्न ।
चन्नां विचां काहण कन्हैयां वर लोड़िए ।

सावन काज न रचाईं

मैं तैनूं आखिया, मेरे बाबला, सुन धरमिआ,
वे सावन काज न रचाईं ।
सावन बरसदे जी कोई मेघड़े जी, वारी मेघड़े,
भिज जांदे शाम जी दे कपड़े, हरे राम जी ।
कोई झुल्लियो वे दखणा वा, वे सुन धरमिया,
सुक जांदे शाम जी दे कपड़े, हरे राम जी ।

मैंनूँ रख लै अज्ज दी रात

मैंनूं रख लै, बाबल वे अज्ज दी रात उधारी।
बेहड़े बैठी मां, मैं विछुड चली आप नी।
कीकन रखां धीए नी, मैं सजन सदा लए आप नी
मैंनूं रख लै वीरा वे, अज्ज दी रात उधारी

टप्पे

टप्पों का पंजाब के लोक गीतों में विशेष महत्व है। ये प्रायः गिद्दा, भंगड़ा और विवाह आदि के समय नृत्यों के साथ गाए जाते हैं। ये बहुत रोचक और लोकप्रिय होते हैं। उदाहरण देखिए—

बारी बरसीं खटण गिया सी, खट्टके लिआंदा फीता
ओह्दे नाल नईं बसना, जिन मिडिल पास न कीता

मिडिल पास न करने वाले पति के साथ वह रहना नहीं चाहती। आलसी पति भी उसे पसन्द नहीं :

बारी बरसीं खटन गया सी,
खट्ट के लियांदे धागे।
ओह्दे नाल नईं बसना।
जिहड़ा सुत्ता पया ना जागे।

इस के अलावा और बहुत से ऐसे गीत हैं जो कि किसी विशेष कोटि में नहीं आते बल्कि उन का सम्बन्ध सामान्य-जीवन से होता है। एक नवोढा अपनी ननद के तानों से तंग आकर कहती है।

नी मैं तेरी गल्लाँ ने मारी
ननदे सप्प रंगिए।
जित्थे ननंदा दी सरदारी,
ओह घर नईं बसदे॥

कुँआरों पर भी इन गीतों में छींटे कसे गए हैं।

चुल्ले अग्ग नई घड़े विच पानी,
ओह घर छड़ेयां दा।
जित्थे लून घोटना खटके,
ओह घर छड़ेया दा।

और इससे भी आगे, खीझ कर वे कहती हैं :—

तुसी दे देयो देश निकाला,
पिण्ड दे छड़ेयां नूं।

मां और सास की तुलना करते हुए एक युवती कहती है :

मावां ते ठंडियां छावां,
मैं मां दी धी सदवामां।
सस्सां किस पापी बनाइयां,
साढे मगर चुड़ेलां लाइयां।

ससुराल की सराहना करते हुए एक युवती उसके बारे में कहती है :

बसना सहुरियां दा,
घुंड कढना, मटक के टुरना।
इह पिंड सहुरियां दा।

वास्तव में पंजाब लोक गीतों में इतना समृद्ध है कि उसके दिग्दशन के लिए एक बहुत बड़े ग्रन्थ की आवश्यकता है। फिर भी कुछ एक उदाहरण दे कर उनका किंचिन्मात्र दिग्दर्शन ही करवाया गया है।

• • •